अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त एवं गाया परिकल्पना

Atharvavedīya Pṛthivī Sūkta evam Gaia Parikalpanā

एम. फिल् उपाधि हेतु

लघु शोध–प्रबन्ध

शोध निर्देशक–

डॉ. राम नाथ झा

शोधकर्त्री–

वन्दना यादव

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 110067

2012

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110067

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

July 20, 2012

DECLARATION

I declare that the dissertation entitled **'अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त एवं गाया परिकल्पना'** submitted by me for the award of degree of **Master of Philosophy** is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other Institution/University.

Vandana Yadav

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110067

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

July 20, 2012

CERTIFICATE

The dissertation entitled **'Atharvavedīya Pṛthivī Sūkta evam Gaia Parikalpanā'** submitted by Vandana Yadav to **Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi -110067** for the award of degree of **Master of Philosophy** is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.

Prof. Shashiprabha Kumar — **Dr. Ram Nath Jha**

(Chairperson) — **(Supervisor)**

“इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः”

(ऋग्वेद 10.14.15)

प्राक्कथन

वेदों की सुदृढ़ आधारशिला पर ही भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता का भव्य प्रासाद प्रतिष्ठित है । अपने प्रातिभ नेत्रों से साक्षात्कृतधर्मा महर्षियों ने जिन सत्यों का साक्षात्कार किया और जो आध्यात्मिक ज्ञानधारा उनके अन्तःकरण में प्रवाहित हुई, उनको मन्त्र रूप प्रदान किया । भारतीय ज्ञान जिसका सम्बल प्राप्त कर सतत पुष्पित तथा पल्लवित है उस दिव्य प्रभा का परिचायक वेद है । प्राचीन यूनानी परम्परा में भी 'Mother Earth' व 'Earth Goddess' जैसे विचार पृथिवी के प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित करते हैं ।

मानव के पृथिवी के प्रति अचेतन सम्बन्धी विचारों के कारण अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं । पारम्परिक भौतिकी प्रदत्त इस दृष्टिकोण ने मनुष्य की प्रवृत्ति को ही परिवर्तित कर दिया, जिसका परिणाम है कि आज मानव ने अपने स्वार्थवश भूमि, जल, वन, पर्वत, नदी आदि प्राकृतिक स्रोतों का दोहन प्रारम्भ कर दिया है । इतना ही नहीं, स्वयं को सर्वश्रेष्ठ प्राणी घोषित करते हुए वह न केवल पृथिवी अपितु पशु–पक्षियों को भी अपने उपभोग की वस्तु समझता है । यह धारणा सर्वथा अवैदिक है । प्राचीनकाल में ऋषियों ने प्राकृतिक पदार्थों के साथ तादात्म्य सम्बन्ध मानते हुए प्रकृति का मानवीकरण किया हुआ था । प्रत्येक अंश में चेतना का विस्तार मानकर उनके प्रति सम्मान का भाव स्थापित किया था । 'रात्रि में वृक्ष सोते हैं, इन्हें काटना नहीं चाहिए' जन–जन में व्याप्त यह धारणा प्रकृति के मानवीकरण का ही परिणाम है । अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में हरे भरे वनों एवं पर्वतों से आच्छादित पृथिवी की कामना की गयी है । वर्तमान समय में भूगर्भवैज्ञानिकों द्वारा भी 'गाया परिकल्पना' (Gaia Hypothesis) जैसे सिद्धान्त प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनमें यह सिद्ध किया गया है कि पृथिवी एक जीवित तन्त्र है तथा इस पर विद्यमान सभी चर एवं अचर परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं ।

प्रकृति का प्रत्येक कार्य एक स्वाभाविक और नियमित प्रणाली का श्रेष्ठ रूप है, जिसे विरूप करने का अर्थ ब्रह्माण्ड की परम सत्ता को चुनौती देना है । इस युग के मानव ने अपनी प्रगतिशील सभ्यता और संस्कृति से प्राकृतिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर पर्यावरण की अनेक समस्याओं को आमन्त्रित किया है । परिणामस्वरूप पारिस्थितिकीय असन्तुलन एवं अनेक पर्यावरणीय समस्याएं सम्पूर्ण विश्व के समक्ष गम्भीर समस्या के रूप में उपस्थित हैं ।

प्रकृति का चक्र स्वतः व्यवस्थित रूप से चलता है । परन्तु मनुष्य ने अपने बुद्धिबल से परमाणु अस्त्रों का निर्माण कर सम्पूर्ण विश्व को विकट स्थिति में डाल दिया है । इस विध्वंसात्मक सफलता का अभिमान करते हुए परस्पर सामञ्जस्य के अभाव में विश्वव्यापी पर्यावरण सुधारात्मक सम्मेलनों को भी मानव तिरस्कृत कर रहा है । इसका उदाहरण 1992 में हुए 'रियो डि जेनेरियो का पृथिवी सम्मेलन' हमारे समक्ष है जिसमें सभी देशों की सहमति नहीं बन पायी तथा स्वार्थ के कारण कोई ठोस हल नहीं निकाला जा सका । यद्यपि

सरकार द्वारा निरन्तर किये जा रहे प्रयास सराहनीय हैं परन्तु स्थायी समाधान नहीं है । स्थायी समाधान हेतु मनुष्य के विचार परिवर्तन की अत्यंत आवश्यकता है । अत: मनुष्य के लिए अपने साहित्य एवं संस्कृति के आधारभूत वेद का सिंहावलोकन आवश्यक प्रतीत होता है । क्या अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त के मन्त्र वर्तमान में मनुष्य का मार्गदर्शन कर सकते हैं ? क्या पृथिवी सूक्त में पर्यावरण शिक्षा पर आधारभूत सामग्री उपलब्ध हो सकती है ? क्या अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त मनुष्य के दृष्टिकोण परिवर्तन में सहायक सिद्ध हो सकता है ? इन सभी प्रश्नों का वैध एवं विश्वसनीय उत्तर खोजने का प्रयास इस लघु–शोध में किया गया है जो वर्तमान समय में प्रासंगिक हो सकता है ।

अथर्ववेदीय 'पृथिवी सूक्त' में भूमि का विविध रूप में चित्रण एवं भूमि के लिए प्रयुक्त विभिन्न उपाधियां न केवल इसके स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं अपितु प्राकृतिक स्रोत के प्रति हमारी चेतना में इसके महत्त्व को इंगित कर देवभाव को भी विकसित करती हैं । यह भावना पृथिवी को हानि न पहुंचाने तथा इसके संरक्षण एवं संवर्धन को प्रेरित करती है । आज इसी भाव को जन–चेतना में विकसित किये जाने की आवश्यकता है, जिससे मनुष्य को स्वस्थ एवं संरक्षित वातावरण प्राप्ति में सहायता तथा उन्नति में सुगमता हो । आधुनिक उपाय एकांगी एवं मानव के क्षणिक हितों को ध्यान में रखकर किये जा रहे हैं । वैदिक चिन्तन में निरूपित उपाय समग्रता लिए हुए सार्वकालिक हैं । ऋषियों द्वारा प्रदत्त सुझावों में मानवीय हित ही नहीं, प्राकृतिक सन्तुलन की सदिच्छा भी विद्यमान है । इसी में मनुष्य का पूर्ण और वास्तविक हित सुरक्षित है ।

सर्वप्रथम उस असीम सत्ता के प्रति कृतज्ञता जिसने मुझे इस शोध के योग्य बनाया ।

इस शोध कार्य के सम्पन्न होने में गुरू की क्या भूमिका रही है उसे शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करना व आभार प्रकट करना दुष्कर है । गुरू की अपेक्षाओं पर भविष्य में पूरा उतर कर ही गुरू के ऋण से उऋण हुआ जा सकता है, इससे इतर मार्ग मैं नहीं जानती । इस कार्य को शीघ्र तथा सुचारू रूप से सम्पन्न कराने के लिए कोमल हृदय एवं पितृतुल्य स्नेहमय गुरूवर डॉ. राम नाथ झा के वेद और विज्ञान के अन्तर्सम्बन्धित दृष्टि सम्पन्न मार्गनिर्देशन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अनिवार्य प्रतीत हो रहा है । अन्यथा यह लघु शोध प्रबन्ध इस रूप में कठिन था । अत: इस शोध की उपलब्धियां गुरूजी की एवं जो न बन सका वह मेरा है ।

विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र की अध्यक्षा प्रो. शशिप्रभा कुमार की मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मेरी न केवल वेदों के प्रति अध्ययन में रूचि विकसित की अपितु वेदों को सम्यक् समझने की दृष्टि भी प्रदान की । संकाय सदस्य डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल, डॉ. हरिराम मिश्र, डॉ. रजनीश कुमार मिश्र, डॉ. गिरीश नाथ झा, डॉ. सी. उपेन्द्र राव को धन्यवाद देना चाहूँगी जिनके अमूल्य सुझाओं ने शोधकार्य को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करने में सहयोग किया । संस्कृत विभाग के सभी कर्मचारी गणों के सहयोग के प्रति भी आभार ।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, साहित्य अकादमी, दिल्ली विश्वविद्यालय, वनस्थली विद्यापीठ आदि के पुस्तकालयों से मिला सहयोग शोध को समृद्ध करने में अति महत्त्वपूर्ण रहा, अतः इनका आभार ।

परिवार के सहयोग व शुभकामना के बिना यह कार्य असंभव था । मम्मी–पापाजी जिन्होंने बचपन से ही संस्कृत भाषा के प्रति अनुराग बीज वपन कर सदैव मुझे अध्ययन हेतु प्रोत्साहित किया । सास–श्वसुर के स्नेह व आशीर्वाद का संबल हमेशा मेरे लिए प्रेरणास्रोत है । पति डॉ. वीरेन्द्र सिंह के दैनन्दिन सहयोगपूर्ण व्यवहार का धन्यवाद किन शब्दों में व्यक्त करूँ वह मेरी समझ से परे है । अतः इनके लिए न धन्यवाद न आभार केवल और केवल प्यार । अग्रज विनय एवं भाभीजी नीलम के सहज स्नेहपूर्ण योगदान एवं अमूल्य सत्परामर्श हेतु मैं इनकी अत्यधिक ऋणी हूँ । सम्माननीय मदन भैया एवं गीता दीदी द्वारा मिला प्रोत्साहन अविस्मरणीय है । अनुज विवेक एवं कल्पना व कार्तिक (भतीजी–भतीजा) का प्यार हमेशा मेरे साथ रहता है ।

मेरी प्रिय सखी प्रियंका उपाध्याय के सहयोग को कैसे विस्मृत कर सकती हूँ जिसने प्रत्येक क्षण मेरी सहायता की । शोध सम्बन्धित सामग्री का अनुवाद कराने में कल्पना ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।

अन्त में उन सभी का भी आभार जिन्होने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मुझे शोध में सहायता प्रदान की

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ सं.

- प्राक्कथन i-iii
- विषयानुक्रमणिका iv-v
- संकेताक्षर सूची vi
- **प्रथम अध्याय– विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना 1-13**

- **द्वितीय अध्याय– अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त में पृथिवी की अवधारणा 14-43**
  - ➢ वैदिक सृष्टि चिन्तन एवं पृथिवी की अवधारणा
  - ➢ पृथिवी की व्युत्पत्ति एवं अर्थ
  - ➢ पृथिवी के लिए सूक्त में प्रयुक्त विभिन्न उपाधि
  - ➢ महत्त्वपूर्ण शब्दों का स्पष्टीकरण
  - ➢ द्यावा–पृथिवी संरक्षण एवं महत्त्व
  - ➢ पृथिवी के समक्ष वर्तमान संकट एवं अथर्ववेदीय उपाय

- **तृतीय अध्याय– पृथिवी की वैश्विक अवधारणा एवं गाया परिकल्पना (Gaia hypothesis) 44-71**
  - ➢ वैदिक परम्परा एवं ताओ (Tao) परम्परा
  - ➢ प्राचीन यूनानी परम्परा में पृथिवी का स्वरूप
  - ➢ पारम्परिक/ चिरसम्मत भौतिकी में पृथिवी सम्बन्धी दृष्टिकोण
  - ➢ पृथिवी की स्थिति एवं प्रमुख समस्याएं
  - ➢ पृथिवी सूक्त में भूगर्भशास्त्र सम्बन्धी दृष्टान्त
  - ➢ गाया परिकल्पना (Gaia hypothesis)
  - ➢ गाया परिकल्पना (Gaia hypothesis) की आवश्यकता

- **चतुर्थ अध्याय – पृथिवी की अचेतनता एवं चेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण एवं पर्यावरण पर उसका प्रभाव** **72-88**
  - ➢ पृथिवी की अचेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण
  - ➢ अचेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण का पर्यावरण पर प्रभाव
  - ➢ पृथिवी की चेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण
  - ➢ चेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण का पर्यावरण पर प्रभाव
  - ➢ पर्यावरण सुरक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास

- उपसंहार 89–93
- मन्त्र–सूची 94–100
- मन्त्रानुक्रमणिका 101–102
- सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची 103–115

संकेताक्षर सूची

अथर्व.	–	अथर्ववेद
ईशा. उप.	–	ईशावास्योपनिषद्
उणा.	–	उणादिकोष
ऋ.	–	ऋग्वेद
का. सं.	–	काठक संहिता
गो. ब्रा.	–	गोपथ ब्राह्मण
छा. उप.	–	छान्दोग्योपनिषद्
जै. ब्रा.	–	जैमिनीय ब्राह्मण
त. सं.	–	तर्कसंग्रह
ता. ब्रा.	–	ताण्ड्य ब्राह्मण
तै. उप.	–	तैत्तिरीयोपनिषद्
तै. ब्रा.	–	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै. सं.	–	तैत्तिरीय संहिता
निघ.	–	निघण्टु
निरु.	–	निरुक्त
प्र. पा. भा.	–	प्रशस्तपादभाष्य
प्रश्नो.	–	प्रश्नोपनिषद्
पं. द.	–	पञ्चदशी
बृ. सं.	–	बृहत्संहिता
ब्र. सू.	–	ब्रह्मसूत्र
मनु.	–	मनुस्मृति
मैत्रा. सं.	–	मैत्रायणी संहिता
यजु.	–	यजुर्वेद
लक्षणा.	–	लक्षणावली
वै. सू.	–	वैशेषिक सूत्र
शत. ब्रा.	–	शतपथ ब्राह्मण
श्वेताश्व.	–	श्वेताश्वतरोपनिषद्
सर्वा.	–	सर्वानुक्रमणी
सां. सू.	–	सांख्य सूत्र
श्रीमद्भग.	–	श्रीमद्भवद्गीता

प्रथम अध्याय

विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना

वैदिक संहिताएं भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि हैं । इनमें सम्पूर्ण वातावरण एवं परिवेश का सम्यक् वर्णन सन्निहित है तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं संवर्धन के बीज भी विद्यमान हैं । वेदों में ज्ञान और विज्ञान की सभी विधाओं का सूत्र रूप में उल्लेख है । अतः मनु का कथन है–

''सर्वज्ञानमयो हि सः'' [1]

वेद भारतीय संस्कृति के प्रथम उत्स हैं एवं वैदिक संहिताएं सृष्टि के आदि काव्य के रूप में मानव तथा प्रकृति के मध्य शाश्वत अभिन्न साहचर्य के सूचक प्राचीनतम उपलब्ध स्रोत हैं । वैदिक संहिताओं में पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, जल, अग्नि, दिशाएं, पर्वत, मेघ, वृक्ष, पशु आदि परिधि रूप में परिगणित हैं–

''सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।

यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनायकम् ॥'' [2]

पृथिवी भी ब्रह्माण्ड में जगत् की पर्यावरण रूप परिधि है, जो सभी जीव जन्तुओं एवं पदार्थों की आच्छादिका है–

''उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।

तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥'' [3]

निर्वचन की दृष्टि से पृथिवी का अर्थ है–व्यापक, विस्तृत, फैली हुई ।

''प्रथनात्पृथिवीत्याहुः'' [4]

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का पहला सूक्त 'भूमि सूक्त' है । इसका देवता या प्रतिपाद्य विषय भूमि या पृथिवी है ।

---

[1] मनु. 2/7

[2] अथर्व. 8/2/25

[3] वही 13/1/46

[4] निरु. 1/4/2

''या तेनोच्यते सा देवता'' [5]

पृथिवी और भूमि ये दोनों पद समानार्थक माने जाते हैं–

''गौः ग्मा ज्मा च क्षमा क्षा क्ष्मा क्षोणी पृथ्वी क्षितिर्मही ।

निर्ऋतिर्भूरिला चोर्वी रिपः पूषा तथादितिः ॥

गोत्रावनिश्च गातुश्च भूमिरित्येकविंशतिः ।

निघण्टौ संगृहीतानि पृथ्वीनामानि सूरिभिः ॥'' [6]

यद्यपि व्युत्पत्ति के आधार पर इन दोनों में सूक्ष्म अन्तर के संकेत भी उपलब्ध होते हैं–

(क) ''यदप्रथयत् तत् पृथिव्यै पृथिवीत्वम् ।''

(ख) ''भूमिरस्यां वै स भवति यो भवति ।'' [7]

भूमि सूक्त के 63 मन्त्रों में दोनों में से (पृथिवी और भूमि) प्रत्येक पद 38 बार प्रयुक्त हुआ है तथा लगभग 15 स्थलों पर दोनों पद एक साथ विशेषण–विशेष्य के रूप में या पर्याय रूप में प्रयुक्त हुए हैं ।[8] अतः यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि इस सूक्त में भूमि और पृथिवी में से नामपद कौन है और विशेषण पद कौन है ? किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस सूक्त में भूमि या पृथिवी की विभिन्न विशेषताएं सन्निहित हैं ।

विस्तृतरूपा पृथिवी जल, अन्न आदि सम्पदाएं देकर हमें जीवन प्रदान करती है, वह हमारी परिधि है, रक्षिका है । वैदिक संहिताओं में पंचतत्त्व (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश) रूप प्राकृतिक सम्पदाओं को पूज्य माना गया, जिससे इनके प्रति हमारे मन एवं मस्तिष्क में श्रद्धा का भाव जागृत हो । पंचतत्त्वों में अग्रणी पृथिवी को वैदिक संहिताओं में माता के रूप में पूजित किया गया है । वैदिक ऋषि ने प्रकृति के एक–एक तत्त्व के साथ स्व का सम्बन्ध स्थापित किया एवं स्वयं को अभिन्न अंग मानते हुए पृथिवी एवं मनुष्य में माता–पुत्र सम्बन्ध को स्पष्टतया स्वीकार किया है । अतः यही कारण है कि 'पृथिवी माता' यह उद्घोष पूरी वैदिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है ।

---

[5] सर्वा.

[6] निघ. 1/1

[7] (क) तै. ब्रा. 1/1/3/6–7
(ख) शत. ब्रा. 7/2/1/11

[8] फतहसिंह, मातृभूमि की वैदिक वन्दना, अथर्ववेद पृथिवी सूक्त, पृ. 58

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।'' [9]
''पृथिवी माता द्यौष्पिता ।'' [10]

प्रारम्भ से ही भारतीय परम्परा में वैश्विक दृष्टिकोण को अपनाया गया है तथा प्रकृति को केवल भोग्या न समझकर उसके साथ मातृवत् व्यवहार किया गया है, क्योंकि समस्त जगत् एक ही परमतत्त्व की अभिव्यक्ति मात्र है ।

''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ।'' [11]

अतः वह मुख्य कारण चेतन है तो उसके कार्य अचेतन नहीं हो सकते–

''वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।

तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु ॥'' [12]

16वीं, 17वीं शताब्दी की पारम्परिक/चिरसम्मत भौतिकी *(Classical Physics)* ने मनुष्य को प्रकृति से नैसर्गिक रूप से असम्बद्ध माना, जिसके कारण मनुष्य का प्रकृति के प्रति उपभोगवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ । पारम्परिक भौतिकी (Classical Physics) के प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन हैं । इन्होंने कार्टिजियन मैकेनिज्म (Cartesian Machanism) तथा पाश्चात्य गणितज्ञ व दार्शनिक रेने देकार्त (*Rene Descartes*) के सिद्धान्त Mind-Matter Dualism का समर्थन किया । इनके सिद्धान्तों के अनुसार संसार यन्त्रवत् है । ईश्वर ने इस यन्त्ररूपी ब्रह्माण्ड में कुछ नियम डाल रखे हैं । संसार को गति प्रदान करने के पश्चात् ईश्वर इस संसार से उसी प्रकार पृथक् हो गया जैसे मशीन बनाने वाला व्यक्ति मशीन को बनाकर तथा एक नियम के अनुसार चलाकर उससे पृथक् हो जाता है ।

''In the Newtonian view, God has created, In the beginning, the material particles, the forces between them, and the fundamental laws of motion. In this way, the whole universe was set in motion and it has continued to run ever since, like a machine, governed by immutable laws.'' [13]

---

[9] अथर्व. 12/1/12
[10] यजु. 2/10–11
[11] तै. उप. 3/1/1
[12] यजु. 32/8
[13] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p. 65

अतः पृथिवी के साथ मातृवत् व्यवहार की अपेक्षा उसका मनचाहा उपभोग किया जाने लगा तथा प्रकृति पर विजय पाना ही एकमात्र लक्ष्य समझा जाने लगा ।

रेने देकार्त के चिन्तन के सम्बन्ध में ये पंक्तियां उनके दृष्टिकोण को सूचित करती हैं–

''The material universe, including living organisms, was a machine for Descartes, which could in principle be understood completely by analysing it in terms of its smallest parts.'' [14]

रेने देकार्त ने विश्व को चेतन (mind) तथा जड़ (matter) के रूप में विभक्त कर दिया । दोनों को एक दूसरे से पृथक् मानकर जड़ तत्त्व को चेतन के अधीन माना । अतः मनुष्य को प्रकृति के निर्मम दोहन की स्वीकृति प्रदान की । जिसके कारण पृथिवी का सन्तुलन बिगड़ रहा है और भू–ताप वृद्धि, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ओजोन क्षरण, समुद्रतटीय क्षेत्रों तथा छोटे द्वीपों का समुद्र में डूबना, हिम का पिघलना जैसी परिस्थितियां उत्पन्न हो रही हैं । वैश्विक तापवृद्धि का एक दुष्परिणाम यह होगा कि समुद्र का जलस्तर बढ़ जाएगा और तटवर्ती क्षेत्र जलमग्न हो जाएंगे । वैश्विक स्तर पर प्रतिवर्ष समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हो रही है । यदि कार्बन–डाई–ऑक्साइड के उत्सर्जन की वर्तमान गति यथावत् रही तो पृथिवी के तापमान में वृद्धि होगी । ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ पिघलने से समुद्र का जलस्तर काफी बढ़ रहा है । समुद्र के जल स्तर में वृद्धि से तात्पर्य है कि सम्पूर्ण बांग्लादेश और मालदीव समुद्र में डूब जाएगा । वैश्विक तापवृद्धि से पर्यावरण का तापमान बढ़ने के साथ–साथ जलचक्र में भी परिवर्तन आयेगा । समुद्र के जलस्तर में वृद्धि से कृषि योग्य भूमि डूब जाएगी ।

मनुष्य की भोगवादी दृष्टि के कारण जलवायु में अनपेक्षित रूप से परिवर्तन हो रहा है । कहीं पर सूखा तो कहीं पर तूफान और घनघोर वर्षा की स्थिति उत्पन्न हो रही है । तापवृद्धि होने की स्थिति में कीटनाशकों का दुष्प्रभाव कृषि पर व्यापक रूप से पड़ रहा है जो फसल उत्पादन को भी प्रभावित कर रहा है । परिणामतः अनेक प्राणियों का जीवन संकटापन्न है । स्वयं मानव भी अनेक असाध्य रोगों तथा भावी संतानों तक पहुंचने वाली आधि–व्याधियों से ग्रस्त हो गया है । अपनी भावी पीढ़ी के लिए वह धरती पर ऊर्जा का कौन सा साधन छोड़ सकेगा ? श्वसन क्रिया के लिए कैसी वायु और प्यास बुझाने के लिए कैसा जल वह अपने उत्तराधिकारी को सौंपेगा ? यह पर्यावरण संकट पृथिवी पर मानव

[14] Capra, Fritjof, The Web of Life, p. 19

जाति के वर्तमान ही नहीं भविष्य को भी विपन्न विकलांग बना देगा। अत: जिस मनुष्य की सुख सुविधाओं के लिए प्रकृति को दाव पर लगाया गया आज उसी मनुष्य का अस्तित्व खतरे में है। प्रकृति के प्रति Romantic Poets का दृष्टिकोण सार्वभौम था।

'Romantic Poet' William Blake ने न्यूटन के एकांगी दृष्टिकोण की आलोचना निम्न शब्दों में की है–

''May God us keep

From a single vision and Newton's sleep'' [15]

अत: आज उपभोक्तावादी संस्कृति ही प्रत्येक देश और मानव समूह की संस्कृति बन गयी है। प्रकृति के प्रति समस्त मानव समाज का आचार–विचार स्वार्थपूर्ण और शोषणपरक बन गया है। कम से कम समय में अधिकाधिक पा लेने की होड़, भौतिक उन्नति को ही विकास का पर्याय मानने का भ्रम व आवश्यकताओं की येन–केन–प्रकारेण पूर्ति करने की भोगलिप्सा मानव संस्कृति में ओतप्रोत हो गयी है।

विज्ञान के स्थूल प्रयोग एवं उसके आधार पर प्रकृति का दोहन कर जीवन जीने की नयी पद्धति के कारण 18वीं शताब्दी तक पर्यावरण सम्बन्धी अनेक समस्याएं प्रकट होने लगी। विज्ञान के इस दुष्परिणाम का अनेक प्रकार से विरोध प्रारम्भ हुआ जिसमें जीव विज्ञान, भूगर्भशास्त्री आदि भी सम्मिलित थे। विशेष रूप से भूगर्भवैज्ञानिक जेम्स लवलॉक ने ग्रीस के पारम्परिक "Earth Goddess" सिद्धान्त का वैज्ञानिक परीक्षण शुरु किया एवं गाया परिकल्पना (Gaia Hypothesis) विद्वत् समाज के समक्ष प्रस्तुत हुई। फ्रिट्जाफ कापरा 'The Tao of Physics' में उल्लेख करते हैं–

''The idea of a living planet was formulated in modern scientific language as the so-called 'Gaia Hypothesis', and it is interesting that the views of living Earth developed by eighteenth-century scientists contain some key elements of our contemporary theory.'' [16]

पृथिवी के चारों और जीवन की परत को वर्णित करने के लिए 19वीं शताब्दी के अन्त में आस्ट्रिया के भूगर्भविज्ञानी *Eduard Suess* ने प्रथम बार *'Biosphere'* शब्द का प्रयोग किया। इस विचार को *Vladimir Vernadsky* ने अपनी पुस्तक *'Biosphere'* में पूर्णत: विकसित किया–

---

[15] Capra, Fritjof, The Web of Life, p. 21

[16] वही, p. 22

''Building on the idea of Goethe, Humboldt and Suess, Vernadsky saw life as a 'geological force' which partly creates and partly controls the planentry environment . Among all the early thearies of the living Earth Vernadsky's comes closest to the contemporary Gaia theory developed by James Lovelock and Lynn Margulis in the 1970s.'' [17]

जेम्स लवलॉक *(James Lovelock)* ने नासा *(NASA)* के लिए स्वतन्त्र रूप से शोधविज्ञानी के रूप में कार्य करते हुए प्रथमतः 1960 में वैज्ञानिक रूप से गाया परिकल्पना *(Gaia Hypothesis)* को व्यवस्थित किया । यद्यपि इस परिकल्पना का प्रारम्भ में वैज्ञानिकों एवं पर्यावरणविदों द्वारा विरोध किया गया, किन्तु 1979 में *'Gaia: A New Look at life on Earth'* नामक पुस्तक के रूप में यह प्रसिद्धि को प्राप्त हो सकी । गाया परिकल्पना *(Gaia Hypothesis)* को विकसित करने में माइक्रोबायलॉजिस्ट *Dr. Lynn Margulis* 1971 से ही जेम्स लवलॉक की महत्वपूर्ण सहयोगी रही । जेम्स लवलॉक *(James Lovelock)* ने गाया परिकल्पना *(Gaia Hypothesis)* में सम्पूर्ण जगत् को अन्तर्सम्बन्धित स्वीकार किया है एवं भविष्य के लिए इस दृष्टिकोण को अपनाना अत्यावश्यक माना है–

''In Gaia we are just another species, neither the owners nor the stewards of this planet. Our future depends much more upon a right relationship with Gaia than with the never-ending drama of human interest.''[18]

गाया परिकल्पना *(Gaia Hypothesis)* के बारे में जेम्स लवलॉक*(James Lovelock)* का कथन है–

''Gaia is an evolving system, made up from all living things and their surface environment, the oceans, the atmosphere and crustal rocks, the two parts tightly coupled and indivisible.''[19]

पर्यावरण के प्रति किसी व्यक्ति या समूह का व्यवहार मानव–पर्यावरण अन्तःसम्बन्ध विषयक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है । मानव प्राणी और प्रकृति के मध्य जो सम्बन्ध स्वीकार करता है, तदनुरूप ही वह आचरण करता है । वैदिक संहिताओं में सम्पूर्ण जगत् को अन्तर्सम्बन्धित स्वीकार किया गया है क्योंकि हमारी प्रत्येक क्रिया से सम्पूर्ण परिवेश प्रभावित होता है । ल्यूसिपस एवं डेमोक्रिटस को छोड़कर यूनानी परम्परा में भी प्रायः इसी

---

[17] Capra, Fritjof, The Web of Life, p. 33-34
[18] LOVELOCK, JAMES, THE AGES OF GAIA , p.11
[19] वही, p. 4

सिद्धान्त (‘Mother Nature’ or ‘Earth Mother’) को प्रतिपादित किया तथा सैद्धान्तिक रूप से सुनिश्चित किया गया कि पृथिवी जीवित है । इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर दो विचारधारा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं–

- ❖ वैदिक संहिताओं, ग्रीक परम्परा एवं भूगर्भ–वैज्ञानिकों के परीक्षण के आधार पर पृथिवी का जीवित होना ।
- ❖ पारम्परिक भौतिकी (Classical physics) में पृथिवी को मृत स्वीकार किया जाना ।

उपर्युक्त दो विचारधाराओं के आधार पर मनुष्यों में विचार भेद देखा जाता है । पृथिवी को जीवित मानने वाले लोग मातृभाव से युक्त होकर उसकी एवं उसके अन्तर्गत आने वाली सभी वस्तुओं की सुरक्षा का उपाय करते हैं । ठीक इसके विपरीत पृथिवी को मृत मानने वाले लोगों का व्यवहार केवल उसके उपभोग पर आधारित होता है । इससे यह स्पष्ट होता है कि पृथिवी के प्रति दृष्टिकोण (जीवित या मृत सम्बन्धी) भेद से व्यवहार में भेद होता है । यही कारण है कि भोगवादी दृष्टिकोण के कारण पृथिवी पर पर्यावरण का असन्तुलन बढ़ रहा है । यदि कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा मन्तव्य है कि विकसित प्रौद्योगिकी के माध्यम से पर्यावरण का प्रदूषण समाप्त किया जा सकता है तो यह केवल भ्रान्ति है । क्योंकि पर्यावरण प्रदूषण की समस्या प्रौद्योगिकी से अधिक व्यक्ति के चिन्तन पर आधारित है । सभी पदार्थों में परमतत्त्व का दर्शन सम्पूर्ण जगत् को मानव के समान धरातल पर ले आता है जिससे स्वामित्व की संभावना ही नहीं रह जाती और सहज साहचर्य भाव स्थापित हो जाता है । जब चेतन–अचेतन सभी तत्त्वत: एक है तो संघर्ष कैसा ? इस चराचर–जगत् में सर्वत्र ईश–तत्त्व विद्यमान है–

‘‘ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।’’ [20]

एकात्मकता की यह भावना सहयोग से एक सोपान आगे बढ़कर मानव पर्यावरण के परस्पर अभेद और तादात्म्य स्थिति की प्रेरणा देती है । पृथिवी के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण किस प्रकार का है, यही पृथिवी की सुरक्षा अथवा प्रदूषण को प्रेरित करता है । अत: केवल प्रौद्योगिकी से पर्यावरणीय असन्तुलन दूर नहीं होगा अपितु लोगों का दृष्टिकोण परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक है जिससे यह भावना जागृत हो कि पृथिवी को सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है । जब तक पृथिवी के प्रति दृष्टिकोण नहीं बदलेगा तब तक समस्या से मुक्ति पाना असंभव है । इसके लिए वर्तमान समय में सरकार भी तत्पर है । अत: समय–समय पर

---

[20] यजु. 40/1

पृथिवी सम्मेलन, *Gaia Conference* इत्यादि आयोजित किये जाते हैं । विश्व स्वास्थ्य संगठन जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से मानव स्वास्थ्य रक्षा पर निरन्तर ध्यान केन्द्रित किये हुए है । इसके लिए WHO जलवायु परिवर्तन के स्वास्थ्य संबंधी परिणामों पर जागरूकता के कार्यक्रम चलाने के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरणों की सहायता करता है । ओजोन क्षरण की समस्या पर विश्वभर का ध्यान आकर्षित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने अपने पर्यावरण कार्यक्रमों के अन्तर्गत 16 दिसम्बर का दिन 'विश्व ओजोन दिवस' के रूप में मनाने का निर्णय लिया है । सन् 1995 से प्रारम्भ किए गये इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विश्व के समस्त देशों से ओजोन को क्षति पहुंचाने वाली हैलोन गैस का कम से कम उपयोग करने की अपील की जा रही है ।

ओजोन क्षरण की प्रक्रिया को रोकने के लिए सर्वप्रथम प्रयास 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम' (U.N.E.P.) के तत्वावधान में वर्ष 1985 में 'वियना सम्मेलन' के आयोजन द्वारा हुआ । सन् 1987 में मांट्रियल (कनाडा) में हैलोन गैस की पर्याप्त कटौती एवं खपत समाप्त करने के उद्देश्य से 48 देशों ने एक समझौता किया । पृथ्वी को 'ग्रीन हाउस इफैक्ट' से उबारने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास शुरू हो गये हैं । परन्तु अभी तक की गयी कार्यवाही की समीक्षा से इसमें प्रतिबद्धता की कमी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, जबकि विशेषज्ञों के अनुसार इन प्रयासों को शुरू करने में काफी देर हो चुकी है । हमें और हमारी पृथ्वी को इस देरी का दुष्प्रभाव सहना पड़ सकता है । ग्रीन हाउस इफैक्ट पर अंकुश लगाने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रथम सन्धि दिसम्बर 1997 में 'क्योटो सम्मेलन' (जापान) के दौरान हुई । इस सन्धि पर अब तक 84 देश हस्ताक्षर कर चुके हैं, परन्तु अमेरिकी सीनेट ने इसे अभी तक मंजूरी नहीं दी है । इस सन्धि के अन्तर्गत सन् 2008 से 2012 की अवधि में तीन प्रमुख ग्रीन हाउस गैसों अर्थात् कार्बनडाइऑक्साइड, मिथेन तथा नाइट्रस आक्साइड के 1990 के उत्सर्जन स्तर में औसतन पांच प्रतिशत की कमी लाने का प्रावधान है । यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिये जरूरी है कि विकसित देशों के द्वारा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर कड़ी पाबंदी लगायी जाए । यह उनकी नैतिक जिम्मेदारी भी है, क्योंकि औद्योगिक क्रान्ति के दौरान उन्होनें ही सबसे अधिक कार्बनडाइऑक्साइड वायुमंडल में उत्सर्जित की है ।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर रोक लगाने के लिये वैकल्पिक गैसों को तैयार करने हेतु, तथा सभी देशों को उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सयुंक्त राष्ट्र पद्धति पर सन् 1994 में 'ग्लोबल एनवायरमेन्टल फैसिलिटी'(G.E.F) का गठन किया गया । आज विश्व के

164 देश इसके सदस्य हैं । G.E.F की आर्थिक सहायता से 120 देशों में 500 से भी अधिक परियोजनाएं चलायी जा रही हैं । भारत में भी 'जेफ'(G.E.F) को जितने धन की आवश्यकता है, वह एकत्र नहीं हो पा रहा है । हथियारों तथा सैनिक साजो– सामान पर अत्यधिक धन व्यय करने वाले देश यह नहीं समझ पा रहे हैं कि देश की रक्षा की तुलना में पृथिवी की रक्षा का उत्तरदायित्व अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

वैश्विक तापवृद्धि के दुष्प्रभावों के बारे में जन जागृति पैदा करने के प्रयास बहुत पहले से चल रहे हैं । कार्बनडाइऑक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के प्रयास प्रारम्भ किये जा रहे हैं । सन् 1992 में प्रसिद्ध 'रियो–डि–जेनेरियो पृथिवी सम्मेलन' का आयोजन हुआ । ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को कम करने की रणनीति बनायी गयी । औद्योगिक रूप से विकसित राष्ट्रों को जीवाश्म ईंधन के दहन से उत्पन्न कार्बनडाइऑक्साइड के उत्सर्जन को वर्ष 2000 तक कम करने के लक्ष्य को मानना पड़ा । इस प्रकार विभिन्न प्रयास व सम्मेलन सरकार द्वारा आयोजित किये गये, जो निम्न हैं एवं इनकी विस्तृत चर्चा चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत की गयी है ।

1990:– आई.पी.सी.सी. (Intergovernmental Panel on Climate Change) की प्रथम रिपोर्ट । वातावरण का तापमान पिछले सौ वर्षों में 03-06°c बढ़ा ।

1992 :– रियो–डि–जेनेरियो में पृथिवी सम्मेलन का आयोजन हुआ ।

1995 :– आई.पी.सी.सी. (Intergovernmental Panel on Climate Change) की द्वितीय रिपोर्ट में जलवायु परिवर्तन को मानवीय हस्तक्षेप के परिप्रेक्ष्य में समझा गया ।

1997 :– क्योटो प्रोटोकाल, विकसित देश ग्रीन हाउस उत्सर्जन गैस में 5% की कमी के लिए सहमत ।

2005 :– क्योटो प्रोटोकाल को अन्तर्राष्ट्रीय कानून के रूप में मान्यता ।

2006 :– स्टर्न की समीक्षा में यह स्पष्ट कि ग्लोबल वार्मिंग विश्व के जीडीपी (Gross domestic Product) को 20% तक प्रभावित कर सकता है ।

2007 :– आई.पी.सी.सी की चतुर्थ रिपोर्ट में जलवायु परिवर्तन के कारणों में 90% मानवीय हस्तक्षेप है ।

2009 :– कोपनहेगन में जलवायु परिवर्तन पर सम्मेलन में नई संधि पर सहमति ।

2010 :– मैक्सिको में हुए सम्मेलन में जलवायु संबंधी कई मुद्दों पर सहमति ।

2011 :– डरबन सम्मेलन में यह स्पष्ट किया गया कि ग्रीन हाउस गैस पिछले दशक की अपेक्षा अधिक तेजी से उत्सर्जित हो रही है ।

2012 :– रियो प्लस–20 पृथिवी शिखर सम्मेलन का आयोजन ।

यद्यपि सरकार द्वारा किए गये इस प्रकार के प्रयास श्लाघनीय हैं । यह अल्पकालीन समय के लिए समस्या से मुक्ति दिलाने में सक्षम हो सकते हैं परन्तु ये स्थाई समाधान नहीं हैं । विगत कुछ वर्षों से वैश्विक दृष्टिकोण का परित्याग कर प्रकृति का अधिक से अधिक दोहन एवं उपभोग को विकास का आधार माना जा रहा है । सभी मनुष्यों का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण त्याग पर आधारित न होकर लोभ पर आधारित है । एक तरफ 'भारतमाता', 'वन्दे मातरम्', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे वैदिक भाव एवं दूसरी तरफ 'प्रकृति का दोहन' जैसे स्थूल शब्दों का प्रयोग किया जाता है, यह अत्यन्त दुःखद है क्योंकि उन्हें पारम्परिक ज्ञान नहीं है । अतः सार्वभौम सोच की जरूरत है । सृष्टि के प्रति इस प्रकार के विचार परिवर्तन की आवश्यकता है जो प्रकृति संबंधी वैदिक चिन्तन के आत्मसात् से ही सम्भव है । जिनके माध्यम से पर्यावरण के मुख्य घटक एवं प्राकृतिक स्रोतों के प्रति हमारी चेतना में देवभाव जागृत होता है ।

अतः इसी पक्ष को दृष्टिगत रखते हुए शोधार्थिनी द्वारा 'अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त एवं गाया परिकल्पना' नामक विषय का चयन किया है जिसमें पृथिवी के संरक्षण एवं संवर्धन के बीज विद्यमान हैं । भूमि को माता कहकर तथा उसे चेतन तत्त्व मानकर उसके प्रति अपने कर्तव्य निर्वहन को स्पष्टतः इंगित किया गया है ।

प्रस्तुत क्षेत्र में विद्यमान पूर्ववर्ती शोध–कार्य *(Existing Research in this area)*

1. Murthy, S. R. N. , *Vedic View of the Earth-A Geographical Insight into the Vedas,* D.K. Printworld (P) Ltd., New Delhi, 1997

2. Bali, Suryakant (ed.), *Historical and Critical studies in the Atharvaveda,* Nag Publishers, Delhi, 1981

3. Chaubey, Braj Bihari, *Treatment of Nature in the Rgveda,* Vedic Sahitya Sadan, Hoshiarpur, 1970

4. Vannucci, M., *Human Ecology in the Vedas*, D. K. Printword (P) Ltd., New Delhi, Frist Published in India, 1999

5. Capra, Fritjof, *The Tao of Physics: An Exploration of the Parallels between Modern Physics and Eastern Mysticism,* Shambhala Publications, Berkley, California, 1991

6. Capra, Fritjof, *The Web of Life 'A New Synthesis of Mind and Matter from the author of the Tao of Physics,* Harper Collins Publishers, 1996

7. दवे, दया, *वेदों में पर्यावरण,* सुरभि पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2000
8. रस्तोगी, वन्दना, *प्राचीन भारत में पर्यावरण चिन्तन,* पब्लिकेशन्स स्कीम, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2000
9. रुस्तगी, उर्मिला, *वेद तथा पर्यावरण,* जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996

विद्यमान शोध–कार्य से प्रस्तुत शोध–कार्य का वैशिष्ट्य *(In what way is this research going to be different from existing work in this area)*

- S. R. N. Murthy की '*Vedic View of the Earth-A Geographical Insight into the Vedas'* में भौगोलिक दृष्टि से पृथिवी का विवेचन है । इस पुस्तक में ग्रह तथा नक्षत्र मण्डल की विशद् विवेचना की गयी है । अथर्ववेद से सम्बन्धित बहुत संक्षेप में ही वर्णन उपलब्ध है ।
- Suryakant Bali ने '*Historical and Critical studies in the Atharvaveda'* में अथर्ववेद के ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक पक्ष को उल्लेखित किया गया है ।
- Braj Bihari Chaubey ने '*Treatment of Nature in the Rgveda'* में ऋग्वेद में प्रकृति के स्वरूप का विवेचन है ।
- M. Vannucci ने *'Human Ecology in the Vedas'* में पारिस्थितिकी के वैश्विक सन्दर्भ को प्रस्तुत किया है ।
- Fritjof Capra ने *'The Web of Life'* में पर्यावरणीय दृष्टिकोण से प्रकृति एवं पृथिवी के अनुकूल जीवन पद्धति का उल्लेख किया है । इन्होंने अपनी द्वितीय पुस्तक '*The Tao of Physics'* में आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ एवं वैदिक तथ्यों पर समानान्तरता की दृष्टि से विमर्श कर ऐक्य निरूपण करने का प्रयास किया गया है ।

- दया दवे ने '*वेदों में पर्यावरण*' में वैदिक वाङ्मय में पर्यावरणीय चेतना सम्बन्धी स्थलों को इंगित किया गया है ।
- वन्दना रस्तोगी ने '*प्राचीन भारत में पर्यावरण चिन्तन*' में मुख्यत: महाकवि कालिदास के काव्यों में उल्लिखित पर्यावरणीय सन्दर्भों को चित्रित किया है ।
- उर्मिला रुस्तगी ने '*वेद तथा पर्यावरण*' में वैदिक पर्यावरणीय जागरूकता के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं ।

इस प्रकार पूर्वोक्त कार्यों के अवलोकन से स्पष्ट है कि 'अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त एवं गाया परिकल्पना' विषय पर अभी तक कोई स्वतन्त्र शोध कार्य नहीं हुआ है । यद्यपि '*Gaia Hypothesis*' या '*Gaia Theory*' विषय पर स्वतन्त्र रूप से उच्चकोटि के शोध कार्य उपलब्ध हैं तथा वर्तमान में भी हो रहे हैं, किन्तु इस प्रकार के शोध कार्य भूगर्भवैज्ञानिक द्वारा सम्पादित किये गये हैं । वर्तमान समय में भी वैज्ञानिक इस पर शोध कार्य कर रहे हैं, जिसमें मुख्य रूप से पृथिवी जीवित है ऐसा सिद्ध किया गया है । इस प्रकार के शोध कार्य से समस्त पर्यावरणीय समस्याओं से मुक्ति संभव है । इसी विचार को वैदिक संहिताओं ने स्पष्टत: प्रतिपादित किया है तथा उसके आधार पर समस्त भारतीय परम्परा पृथिवी को माता मानकर उसकी सुरक्षा में सन्नद्ध है । समस्या केवल वहां है जहां न्यूटन और रेने देकार्त के सिद्धान्त को मानने वाले लोग पृथिवी को मृत वस्तु के रूप में स्वीकार कर उसके दोहन एवं शोषण द्वारा पर्यावरण प्रदूषण को और अधिक बढ़ा रहे हैं तथा प्रकृति के साथ–साथ स्वयं को भी संकट में डाल रहे हैं ।

अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त एवं गाया परिकल्पना– इस शोध कार्य में शोधार्थिनी द्वारा अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त (भूमि सूक्त/पृथिवी सूक्त) को आधार बनाया गया है । शोधार्थिनी द्वारा शोध कार्य की सीमित समयावधि को ध्यान में रखते हुए गाया परिकल्पना से सम्बन्धित जेम्स लवलॉक कृत आधारभूत सामग्री तथा पृथिवी के चेतनता सम्बन्धित विचार को ही प्रमुखता दी गयी है।

इस शोध कार्य में मुख्यत: विश्लेषणात्मक *(Analytical)*, सान्दर्भिक*(Contextual)* एवं तुलनात्मक*(Comperatical)* प्रविधियों को उपयोग में लिया गया है । इसमें निम्न बिन्दुओं को प्राथमिकता देते हुए एवं उनकी सहायता लेते हुए कार्य किया गया है–

- अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त में वर्णित पृथिवी सम्बन्धी अवधारणा एवं गाया परिकल्पना (*Gaia Hypothesis)* में विकसित पृथिवी सम्बन्धी अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन।
- पृथिवी सूक्त तथा गाया परिकल्पना *(Gaia Hypothesis)* सम्बन्धी मूल स्रोतों का अध्ययन करते हुए पृथिवी के स्वरूप का विवेचन।

अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त का गहन अध्ययन करते हुए इसकी अवधारणा से सम्बद्ध प्रसंगों का अन्वेषण किया गया है। जहां सान्दर्भिक विधि से विषय की वैश्विकता को प्रतिपादित करते हुए उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सन्दर्भ प्रस्तुत किए गये हैं वहीं विश्लेषणात्मक विधि के द्वारा सम्बद्ध प्रसंगों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य के प्रस्तावित अध्यायों के अन्तर्गत प्रथम अध्याय में विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना को स्पष्ट किया गया है। द्वितीय अध्याय में अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त में पृथिवी की अवधारणा को प्रतिपादित किया गया है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत पृथिवी की वैश्विक अवधारणा एवं गाया परिकल्पना को वर्णित किया गया है। चतुर्थ अध्याय में पृथिवी की चेतनता एवं अचेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण एवं पर्यावरण पर उसका प्रभाव प्रदर्शित किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध कार्य में पृथिवी सूक्त, गाया परिकल्पना, पारम्परिक विज्ञान एवं प्राचीन यूनानी परम्परा में पृथिवी सम्बन्धी विचार एवं पर्यावरण पर उसके प्रभाव को परिलक्षित करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय

अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त में पृथिवी की अवधारणा

वैदिक सृष्टि चिन्तन एवं पृथिवी की अवधारणा–

सृष्टि प्रक्रिया के विषय में वेद का चिन्तन एवं उसमें पृथिवी के स्वरूप की अवधारणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । ऋग्वेद में प्रजापति, परमेष्ठी नारायण तथा दीर्घतमस् आदि ऋषियों ने सृष्टि रचना की आरम्भिक अवस्था का वर्णन किया है । ऋग्वेद के पुरुष सूक्त एवं नासदीय सूक्त में इसी विषय वस्तु का प्रतिपादन हुआ है । पुरुष सूक्त में विराट पुरुष से ही सृष्टि उत्पत्ति मानी गई है । नारायण ऋषि ने पुरुष सूक्त में परम शक्ति परमात्मा की रचनात्मक शक्ति तथा सर्वव्यापकता को स्पष्ट करते हुए कहा है–

''सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।'' [21]

सर्वशक्तिमान् परमात्मा समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है । इस जगत् के निर्माता ने सर्वाश्रय प्रकृति को चारो ओर से अपने स्वरूप द्वारा घेर रखा है । प्रकृति को सब ओर से वरण करने के बाद भी वह इससे दश अंगुल पर सुशोभित होकर स्थित है । वह भोग एवं कर्मफल से परे है । संसार में सर्वत्र उसी की सत्ता है । उसी की शक्ति कार्यरत है ।

दीर्घतमस् ऋषि ने सृष्टि उत्पत्ति के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहा है–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।। [22]

अर्थात् दो पक्षी एक ही वृक्ष पर पास–पास बैठे हैं । इन दोनों में से एक वृक्ष के फलों को खा–खाकर स्वाद ले रहा है, दूसरा बिना खाये पहले पक्षी की गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण कर रहा है । इसमें पहला पक्षी जीवात्मा है जो कर्म कर रहा है, दूसरा परमात्मा है

[21] ऋ. 10/90/1

[22] वही 1/164/20

जो उसे फल देने के लिए इसकी गतिविधि का अवलोकन कर रहा है । इससे यह व्यक्त होता है कि सृष्टि निर्माण में दो प्रमुख तत्त्व हैं ।

सर्वशक्तिमान की व्यापकता का वर्णन अथर्ववेद में भी किया गया है–

''बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते ।

ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥'' [23]

एक ऐसा तत्त्व जो बाल से भी सूक्ष्म है (जीव), दूसरा तत्त्व और भी सूक्ष्म होने से दिखाई नहीं देता (सूक्ष्म अदृश्य प्रकृति), तीसरा तत्त्व जिसने समस्त जगत् का आलिङ्गन किया हुआ है वही सर्वव्यापक मेरा प्रिय देवता है ।

ऋग्वेद के ही नासदीय सूक्त के प्रजापति परमेष्ठी ऋषि के अनुसार आरम्भ काल में एक 'स्वधा' नामक पदार्थ रहा है, जो तरल अवस्था में था, उसी से सृष्टि की रचना हुई–

''आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥'' [24]

अपनी अन्तर्निहित शक्ति से मात्र उस एक ने बिना वायु के श्वास लिया । इसके अतिरिक्त किसी की भी सत्ता नहीं थी । प्रजापति द्वारा आगे उस 'एक' के लिए कहा गया है कि वह अन्धकार में अति सूक्ष्म रूप में तरल अवस्था में था ।

''तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ॥'' [25]

वह गतिमान पदार्थ कैसे प्रकट हुआ इसका वर्णन करते हुए दीर्घतमस् ऋषि कहते हैं–

''यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।

श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥'' [26]

सृष्टि के आरम्भ में सर्वप्रथम जो 'एक' उत्पन्न हुआ वह घोर शब्द करता हुआ, सूर्य के समान प्रकाशमान, बाज की बाहों के समान विस्तीर्ण तथा हरिण के पैरों के समान अत्यन्त वेग से ऊपर फैल गया । यह तत्त्व स्वतः ही सर्वत्र व्याप्त हो गया । प्रकट होते ही

---

[23] अथर्व. 10/8/25
[24] ऋ. 10/129/2
[25] वही 10/129/3
[26] वही 1/163/1

उस नियन्त्रक शक्ति का ध्यान त्रित (सत्व, रजस्, तमस् तीन शक्तियों की संतुलित अवस्था) की ओर केन्द्रित हुआ । त्रित के परमाणु तेजयुक्त होकर सक्रिय हो उठे ।

''यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।

गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥'' [27]

अतः परमाणुओं में गति उत्पन्न हो गई । वे संयुक्त होने लगे, इस गति का नाम वेदों में वायु (Motion) कहा गया है । परमाणुओं में गति के फलस्वरुप संयोग होने लगा ।

दीर्घतमस् ने ऋग्वेद में तीन प्रकार के निबन्धन (संयोग) एवं ये तीनों निबन्धन अन्तरिक्ष में बने एवं पृथिवी पर आये, यह वर्णन किया है ।

''असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।

असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।

उतेव मे वरूणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥'' [28]

सत्व, रजस् और तमस् क्रमशः धनात्मक, ऋणात्मक एवं शून्य आवेग से युक्त कहे गये हैं । ये आपः नाम से कहे गये हैं । हिरण्यगर्भ ऋषि के अनुसार पंच तत्त्वों का उत्पत्ति कारण वह एकमात्र स्वामी था ।

''हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥'' [29]

वह 'एक' पंचमहाभूतों (आकाश, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु) का एकमात्र कारण बना ।

''सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।

पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥'' [30]

[27] ऋ. 1/163/2

[28] वही 1/163/3-4

[29] वही 10/121/1

[30] वही 6/48/22

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पर्यावरण (सृष्टि) निर्माण में पंच तत्त्व आकाश, वायु, पृथिवी, जल एवं अग्नि को ही प्रमुख माना गया है तथा शेष समस्त तत्त्व इन्हीं से उत्पन्न कहे हैं ।

वैदिक साहित्य में सृष्टि सम्बन्धी अवधारणा में पृथिवी को सबसे महत्त्वपूर्ण माना है तथा इसे विविध नाम दिये हैं । इसे स्वधा, अजरा, अमृता, माया, पृश्नि ,सिन्धु, ऋत, वन, वृक्षा आदि नामों से अभिहित किया गया है ।

पृथिवी एक अनिवार्य तत्त्व है । वेदों में द्यावा–पृथिवी का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है । तीन प्रकार का द्युलोक तथा तीन प्रकार की पृथिवी का उल्लेख किया गया है । ऋग्वेद के वशिष्ठ ऋषि के अनुसार–

''तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्त्रो भूमिरूपराः षड्विधानाः ।

गृत्सो राजा वरूणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं. हिरण्ययं शुभेकम् ॥'' [31]

परम शक्ति ने उपरितल, मध्य एवं रसातल तीन प्रकार की पृथिवी बनायी है जिस पर छः ऋतुएँ परिवर्तित होती रहती हैं । पर्यावरण निर्माण एवं सन्तुलन में तीनों लोकों की शक्तियाँ परस्पर सम्बन्ध रखती हैं । ये अन्योन्याश्रित हैं, जो चराचर जगत् के लिए एक संतुलित चक्र का निर्माण करती हैं । इसे ही प्रकृति कहा है, यही सृष्टि है, यही नियम है । जगत् के स्रष्टा के रूप में दिव्य शक्ति को ही सृष्टि का नियन्ता माना माना गया । वस्तुतः स्रष्टा एवं सृष्टि में कोई भेद नही हैं । सृष्टि ही स्रष्टा है एवं स्रष्टा सृष्टि है । स्रष्टा सृष्टि के रूप में विस्तृत, प्रसारित एवं व्याप्त है । स्रष्टा से अभिव्यक्त समस्त प्राकृतिक तत्त्व बहुत ही नियमित एवं प्रकृष्ट चेतना से युक्त हैं । ये तत्त्व तीनों लोकों में व्याप्त होकर एक रक्षा कवच का निर्माण करते हैं । वेदों में तीनों लोकों में 11–11 तत्त्वों की स्थिति का वर्णन किया गया हैं–

''ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।

अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥'' [32]

मंत्र में आये 11–11 तत्त्वों के नाम इस प्रकार हैं– सूर्यलोक में ग्यारह– प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, जीवात्मा । ये सब वायु के ही रूप हैं

---

[31] ऋ. 7/87/5

[32] वही 1/139/11, यजु. 7/14

जिन्हें हम वायुमण्डल भी कह सकते हैं । पृथिवी लोक में ग्यारह तत्त्व – पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, अंहकार, महतत्त्व एवं प्रकृति हैं इसे स्थलमण्डल भी कह सकते हैं । जल स्थानीय ग्यारह तत्त्व– श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणी, पाद, पायु, उपस्थ और मन हैं, इसे जलमण्डल भी कह सकते हैं ।

सभी प्राकृतिक तत्त्वों को देवता स्वीकार किया गया है । देवता का अभिप्राय है कोई दिव्य शक्ति । वह शक्ति जो मानव जगत् का कुछ उपकार करती है, उसे किसी रूप में कुछ देती है । यास्क ने देव शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है–

''देवो दानाद् वा, दीपनाद् वा, द्योतनाद् वा, द्युस्थानो भवतीति वा ॥'' [33]

इस दृष्टि से पृथिवी, जल, वायु, सूर्य, चन्द्र, मेघ आदि देव हैं क्योंकि ये संसार का उपकार कर रहे हैं अतः वैदिक ऋषियों ने कृतज्ञता स्वरूप इनको देव या देवता कहा है तथा इनके अनुग्रह की कामना की है । जिस देवता को लक्ष्य में रखकर मंत्र की रचना हुई है वह उस मंत्र का देवता एवं वर्ण्य–विषय होता है ।

पृथिवी की व्युत्पत्ति एवं अर्थ–

पंच महाभौतिक तत्त्वों में पृथिवी सबसे स्थूल तत्त्व है । उत्पत्ति के क्रम में इसकी उत्पत्ति सबसे अन्त में मानी गई है, किन्तु जैवीय प्रक्रिया का आधार होने के कारण लोक में इसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । वैदिक साहित्य में पृथिवी के स्वरूप पर गहन चिन्तन किया गया है । जिस पृथिवी पर मानव सृष्टि का विकास हुआ, जो भूमि चराचर जीव जगत् का आधार है, उसकी प्रशस्ति अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में (काण्ड 12,सूक्त 1) में विस्तार से वर्णित हुई है । 63 मन्त्रों का यह सुदीर्घ सूक्त धरती को माता कहकर पुकारता है तथा मानव को उसके पुत्र की संज्ञा देता है ।

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ॥'' [34]

वैदिक संहिताओं में उपलब्ध नामों का परिगणन करते हुए वैदिक कोष 'निघण्टु' में पृथिवी के 21 नामों का परिगणन किया है ।[35] तैत्तिरीय संहिता में विस्तार के कारण पृथिवी नाम की पुष्टि की गयी है–

---

[33] निरु. 7/15

[34] अथर्व. 12/1/12

[35] निघ. 1/1

''अप्रथत पृथिवी'' [36]

आचार्य सायण ने 'प्रथनवती पृथिवी' कहकर इसके नाम का आधार इसके विस्तार को माना है । फेन जब कुछ ठोस आकृति में परिवर्तित हुआ तो वह मृद् कहलाया । जल से उत्पन्न फेन से ही पृथिवी उत्पन्न हुई, अतः यही मृण्मयी पृथिवी है–

''सोऽतप्यत स मृदमसृजतैतद्वै फेनस्तप्यते यदप्स्वावेष्टमानः प्लवते स यदोपहन्यते मृदेव भवति ॥'' [37]

अथर्ववेद में रत्नगर्भा पृथिवी की चर्चा आती है । यहां ऋषि ने रत्नों से भरपूर हृदय वाली पृथिवी को नमस्कार किया है –

''शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः सन्धृता धृता ।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥'' [38]

वैदिक ऋषियों की हरित पृथिवी के प्रति अपार निष्ठा है । हरित भूमि उनकी दृष्टि में प्राणि–जगत् के लिये अत्यन्त हितकारी है–

''भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ॥'' [39]

इन वनस्पतियों को ही पृथिवी की दृढ़ता का मूल माना गया है–

''दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।'' [40]

मैत्रायणी संहिता में भूमि को वनस्पतियों का प्रभवस्थान माना गया है–

''यो बहुशाखो बहुपर्णः सु कार्यो भूम्न एव, भूमान ह्येष एतस्य जग्राह, भूमानमस्य गृह्णाति ।'' [41]

जैमिनीय ब्राह्मण में इसे लोम की संज्ञा दी गयी है–

---

[36] तै. सं. 2/1/2/3
[37] शत. ब्रा. 6/1/3/3
[38] अथर्व. 12/1/26
[39] वही 5/28/5
[40] ऋ. 5/84/3
[41] मैत्रा. सं. 3/9/2, 4/5/5

''स यल् लोमानि ददात्य ओषधि–वनस्पतयो वै लोमान्य–ओषधिवनस्पतीन् एवैभ्यस् तद् ददाति ।'' [42]

दार्शनिकों नें पृथिवी को दार्शनिक पदार्थ के रूप में परिभाषित करते हुए रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श गुणों वाली को पृथिवी कहा है–

''रूपरसगन्धस्पर्शवतीपृथिवी'' [43]

गन्ध पृथिवी में समवाय सम्बन्ध से रहता है एवं अन्य गुण का पृथिवी से संयोग सम्बन्ध है । रूप पृथिवी के साथ जल व अग्नि में भी प्राप्त होता है, इसी तरह रस एवं स्पर्श जल एवं वायु में भी प्राप्त होते हैं अतः गन्ध ही एक ऐसा गुण है जो पृथिवी के अतिरिक्त अन्य किसी द्रव्य में नहीं पाया जाता, अतः इसे पृथिवी का स्वाभाविक या असाधारण धर्म कहा जा सकता है । तर्कसंग्रह में अन्नंभट्ट ने केवल गन्ध का ही उल्लेख किया है, इसका कारण यह है कि गन्ध ही एक ऐसा गुण है जो अन्य सारे गुणों का व्यावर्तक है–

''गन्धवती पृथिवी'' [44]

आचार्य प्रशस्तपाद ने रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व, संस्कार ऐसे पृथिवी के चौदह गुण माने हैं । चौदह गुणों में गन्ध पृथिवी का व्यावर्तक गुण है–

''रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगाविभागपरत्वापरत्वगुरूत्वद्रवत्वसंस्कारवती'' // [45]

अपने इस विशिष्ट गुण को वह अपने सभी उत्पादनों में संप्रेषित करता है । इस गन्ध के विषय में 'भूमि सूक्त' के ऋषि विस्तार से तीन मन्त्रों मे वर्णन करते हुए कहते हैं–

''यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।

यं गन्धर्वा अप्सरश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।

---

[42] जै. ब्रा. 2/54
[43] वै. सू. 2/1/1
[44] त. सं., पृ. 30
[45] प्र. पा. भा., पृ. 15–16

अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मानो द्विक्षत कश्चन ॥

यस्ते गन्धः पुरूषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रूचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु कन्या यां वर्चो यद्भूमे तेनास्मां अपि सं सृज मा नो दिक्षत कश्चन ॥'' [46]

अथर्ववेद में वर्णित मिट्टी की स्वाभाविक सुगन्ध को कीटाणुनाशकों एवं कृत्रिम खाद से नष्ट कर दिया गया है । वास्तव में यह मिट्टी की गन्ध संस्कृति की गन्ध है जिससे सुरभित होकर जन–जन एक दूसरे को मित्रता की दृष्टि से देखता है तथा जहां मित्रता होती है वहां धरा एक परिवार बन जाती है । तब प्रदूषण, दोहन एवं शोषण का प्रश्न ही नहीं होता है । पृथिवी तब मात्र मिट्टी, शिला, पत्थर, धूलमात्र नहीं रहती, वह एक 'चेतन' तत्त्व या देवता बन जाती है । पृथिवी की प्रशंसा में सूक्त रचा गया है तथा सर्वथा जागरूक रहकर इसके सरंक्षण के लिए संदेश दिया गया है । अतः इसके आधार पर मनुष्य प्रकृति का उपभोग जीवनधर्म निर्वाह के लिए अल्पमात्रा में करता है । अतिवादी होकर वह दूसरों के अधिकार का हनन नहीं करता, न ही धरती के वरदानों को शाप बनाने की धृष्टता करता है । क्योंकि वैदिक दर्शन सत्कार्यवाद पर आधारित है परन्तु इसके विपरीत न्यायवैशेषिक (असत्कार्यवाद) एवं न्यूटोनियन साइंस (पारम्परिक भौतिकी) पृथिवी को जड़ स्वीकार करता है, जिसके कारण अनेक समस्याएं उत्पन्न होती है ।

उत्पत्ति–सम्बन्ध में छान्दोग्योपनिषद् के त्रिवृतकरण एवं वेदान्त के पञ्चीकरण सिद्धान्त का भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । छान्दोग्योपनिषद् में त्रिवृतकरण को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

''सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्त्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नाम रूपे व्याकरवाणीति तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति ॥'' [47]

इस श्रुति का अर्थ है कि जिस 'सत्' नामक देवता ने तेज, जल और अन्न अर्थात् अग्नि, जल और पृथिवी इन तीनों भूतों की रचना की उसने विचार किया कि मैं जीवात्मा रूप से इन देवताओं–अग्नि, जल, पृथिवी, इन तीन प्रत्यक्ष भूतों में अनुप्रवेश कर इनके नाम और रूप स्पष्ट करूं । अतः प्रत्यक्ष भूतों में प्रत्येक को त्रिवृत–त्रिवृतात्मक बना दिया । प्रत्येक भूत को पहले दो–दो भागों में विभक्त कर, प्रत्येक भूत के एक–एक अर्धभाग को ज्यों का

[46] अथर्व. 12/1/23,24,25

[47] छा. उप. 6/3/2–3

त्यों रखकर अन्य अर्ध भाग को दो–दो भागों मे विभक्त कर, फिर प्रत्येक भूत के अर्धभाग में अन्यभूतों के एक–एक भाग को मिलाकर त्रिवृतीकरण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है । त्रिवृतीकृत भूत में जिस भूत का आधा भाग रहता है उसे उस भूत के नाम से अभिहित किया गया है ।

आदिशंकराचार्य ने 'पञ्चीकरण' नामक ग्रन्थ में सर्वप्रथम पञ्चीकरण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । विद्यारण्यस्वामी द्वारा रचित पञ्चदशी में पञ्चीकरण का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

''द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः ।

स्वस्वेतर द्वितीयांशैर्योजनात्पञ्च पञ्च ते ॥'' [48]

पञ्चीकरण की प्रक्रिया से पांचों भूतों के समान रूप से पञ्चात्मक होने से जिसमें जिसका वैशेष्य–आधिक्य होता है, उसका वही नाम होना उचित है ।

''वैशेष्यात्तद्वादस्तद्वाद'' [49]

पञ्चीकरण हो जाने पर आकाश में शब्द की; वायु में शब्द और स्पर्श की; अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप की; जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस की तथा पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की अभिव्यक्ति होती है ।

पृथिवी के लिए सूक्त में प्रयुक्त विभिन्न उपाधि–

पृथिवी सूक्त में भूमि के लिए अनेक उपाधियों का प्रयोग हुआ है । यह उपाधियां पृथिवी की विभिन्न विशेषताओं को इंगित करती हुई इसके महत्त्व का प्रतिपादन भी करती हैं । अधोलिखित उपाधियां एवं उनके अर्थ से भाषापरक उत्कृष्टता भी द्रष्टव्य है । मन्त्रों में प्रयुक्त विभिन्न उपाधियां तथा उसका अर्थ एवं किस मन्त्र संख्या में उसका प्रयोग हुआ है, को सारणी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है–

---

[48] पं. द. 6/201

[49] ब्र.सू. 2/4/22

क्रम संख्या	*उपाधि*	*अर्थ*	*मन्त्र संख्या (अध्याय 12)*
1.	पृथिवी	विस्तृत	1,2,4,5,7,11,12,13,14,15, 16,17,21,22,23,24,26,27,29, 30,36,37,41,43,44,45,46,48, 49,52,53,57,59,62
2.	पत्नी	पालन करने वाली	1,
3.	भूमि	सभी का आश्रय–स्थान	3,6,7,8,9,10,11,12,13,14,19, 22,25,26,28,29,31,32,33,34,35, 36,40,41,50,52,54,56,63
4.	विश्वम्भरा	सबका पोषण करने वाली	6
5.	वसुधानी	धन को रखने वाली	6
6.	प्रतिष्ठा	दृढ़ आधार	6
7.	हिरण्यवक्षा	सुवर्ण को वक्षस्थल में रखने वाली	6,26
8.	निवेशनी	बसाने वाली	6
9.	वैश्वानर	सब नरों के हितकारी	6
10.	इन्द्रऋषभा	परमात्मा वा मनुष्य वा सूर्य को प्रधान मानने वाली	6
11.	विश्वदा	सब कुछ देने वाली	7
12.	विश्वरूपा	अनेक रूप वाली, समस्त प्राणियों से सम्पन्न	11
13.	बभ्रू	पोषण करने वाली	11
14.	कृष्णा	जोतने योग्य	11
15.	रोहिणी	उपजाऊ	11
16.	ध्रुवा	दृढ़ स्वभाववाली	11,17,45
17.	पूर्वकृत्वरी	श्रेष्ठों के लिए काम करने वाली	14
18.	औषधीनां मातरम्	अन्न सोमलता आदि की माता	17

19.	शिवा	कल्याणी	17
20.	स्योना	मनभावनी या लुभावनी	17,31,59
21.	अग्निवासा	अग्नि ही वस्त्र है जिसका	21
22.	असितज़ी	कृष्णवर्ण से जो जानी जाए, बन्धन रहित कर्म को जताने वाली	21
23.	शिला	शिला	26
24.	पांसु	धूलि	26
25.	अश्मा	पत्थर	26
26.	विश्वधायस्	सब को धारण करने वाली	27
27.	धृता	धारण की गयी	27
28.	विमृग्वरी	विविध खोजने योग्य	29,35,37
29.	क्षमा	सहनशील	29
30.	ब्रह्मणा वावृधाना	परमात्मा द्वारा प्रथित	29
31.	प्रतिशीवरी	सहारा देने वाली	34
32.	वर्षमेदसा	वर्षा से स्नेह रखने वाली	42
33.	पर्जन्यपत्नी	मेघ से पालन की गयी	42
34.	वसुदा	धन देने वाली	44
35.	देवी	उत्तम गुणों वाली पृथिवी	44,55
36.	धेनुः	गाय की भांति उत्तम पदार्थ देने वाली	45
37.	अनपस्फुरन्ती	निश्चल	45
38.	मन्द्रा	हर्षदायिनी	57
39.	अग्रेत्वरी	अग्रगामिनी	57
40.	भुवनस्य गोपा	संसार की रक्षाकारिणी	57
41.	वनस्पतीनाम् औषधीनाम् गृभिः	वनस्पति और औषधियों की ग्रहण स्थान	57
42.	शन्तिवा	शान्तिवाली	59
43.	सुरभिः	सुगन्धियुक्त	59
44.	कीलालोघ्नी	अमृतमय (स्तनवाली)/अन्न देने वाली	59
45.	पयस्वती	जल सम्पन्न भूमि	59
46.	आवपनी	उपजाऊ	61
48.	अदितिः	अखण्डव्रता	61
49.	कामदुधा	कामना पूर्ण करने वाली	61

50.	पप्रथाना	प्रख्यात/स्तुति योग्य	61
51.	माता	मां तुल्य	12,63

महत्त्वपूर्ण शब्दों का स्पष्टीकरण–

अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्तानुसार भूमि के लिए प्रयुक्त **विभिन्न महत्वपूर्ण शब्दों का स्पष्टीकरण** यहां प्रस्तुत किया जा रहा है–

पृथिवी–

''अप्रथत पृथिवी ।'' [50]

''तामप्रथत् सा पृथिव्यभवत् ।'' [51]

''यदप्रथत तत्पृथिवी ।'' [52]

''साऽप्रथत, सा पृथिव्यभवत्, तत्पृथिव्यै पृथिवीत्वम् ।'' [53]

''यद् (प्रजापतिः) अप्रथयत् तस्मात् पृथिवी ।'' [54]

''प्रथनात् पृथिवीत्याहुः ।'' [55]

''पृथिव्याः प्रथनकर्मणाम् ।'' [56]

''पृथिवी (भूमिः) 'प्रथ्' प्रख्याने । प्रथतेऽसाविति पृथुः । पृथिवी विस्तीर्णेत्यर्थः ।'' [57]

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त भूमि/पृथिवी सूक्त इसलिए कहलाता है कि इसका प्रतिपाद्य विषय भूमि या पृथिवी है । पृथिवी और भूमि ये दोनों पद समानार्थक माने जातें हैं ।[58]

---

[50] तै. सं. 2/1/2/3
[51] शत. ब्रा. 6/1/1/15
[52] का. सं. 8/2
[53] तै. सं. 7/1/5/1
[54] जै. ब्रा. 3/318
[55] निरु. 1/12
[56] वही. 14/12
[57] निघ. 1/1/11
[58] वही. 1/1

प्रथमाना, पप्रथाना, महती और वर्धमाना से भी व्यापक अर्थ की ही पुष्टि होती है ।

भूमि–

''अभूद्वा इदमिति । तद् भूमेर्भूमित्वम् ।'' [59]

''अभूदिव वा इदमिति । तद् भूमेर्भूमित्वम् ।'' [60]

''अभूद्वा ऽइयं प्रतिष्ठेति । तद् भूमिरभवत् ।'' [61] (यह प्रतिष्ठा (आधार) हुई, वही भूमि हो गयी)

''इयं वै भूमिरस्यां वै स भवति यो भवति ।'' [62]

''यदभवत्तद् भूमिः ।'' [63]

''भूमिः (पृथिवी) । भवतेः मि प्रत्ययः । अभूत भूमिस्तथा अभूद्वा इदमिति तद् भूम्यै भूमित्वम् इति श्रुतिः ।'' [64] *भुवः कित् । 'भू'+मि ।* [65]

माता–

''बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।'' [66] माता का निर्वचन मा धातु से संकेतित है अर्थात् माता वह तत्त्व है जिसमें कर्म होता है, निर्माण होता है । इसलिए माता को जननी, उत्पादिका कहा जाता है । यास्क ने माता को अन्तरिक्ष बताते हुए उसका निर्वचन मा (माने) धातु से किया है अर्थात् जिसमें विभिन्न वस्तुओं का निर्माण होता है ।

''मातान्तरिक्षम् । निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि ।'' [67]

मातृरूप में पृथिवी की कल्पना ऋग्वैदिक काल से ही प्रचलित है । द्यावा–पृथिवी को पिता–माता के रूप में माना गया है । इसका पूर्ण विकास अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में मिलता है–

---

[59] जै. ब्रा. 2/244
[60] ता. ब्रा. 20/14/2
[61] शत. ब्रा. 6/1/1/15
[62] वही 7/2/1/11
[63] का. सं. 8/2
[64] निघ. 1/1/18
[65] उणा. 4/46
[66] अथर्व. 8/9/5
[67] निघ. 2/8

''सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ।'' [68]

''भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठतम् ।'' [69]

अथर्ववेद में अन्यत्र पृथिवी के मातृरूप में वर्णन के अनेक मन्त्र उपलब्ध हैं ।[70]

कामदुधा–

पृथिवी मनुष्य की सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली है । अतः यह कामदुधा है–

''कामदुधा पप्रथाना'' [71]

यह प्रत्येक स्थिति में हमारी कमियों को पूर्ण करती है । धेनु की भांति यह भूमि हमें हजारों तरह के धन देती है । आवपनी (बोये हुए अन्न को उपजाने वाली), रासमाना (अनेक रुपों में दान करने वाली), पयोदुहा (पेय प्रदान करने वाली) इस भूमि से अनेक कामनायें और प्रार्थनायें की गयी हैं ।[72]

पत्नी–

''पातीति पतिः । पा रक्षणे इत्यस्मात् पातेर्डतिः ।'' [73] पति का अर्थ पाता या पालयिता होता है एवं पति शब्द का ही स्त्रीलिंग में पत्नी रूप होता है । अतः पत्नी का अर्थ रक्षिका या पालयित्री है । भूमि हमें अन्न, जल, औषधि, इत्यादि खाद्य–पेय पदार्थ एवं विभिन्न खनिज सम्पदायें प्रदान कर हमारा सम्यक् पोषण करती है अतः यह हमारी रक्षिका है, पालयित्री है ।

हिरण्यवक्षा, रत्नगर्भा, वसुदा–

''हिरण्यं हितरमणं भवतीति वा हृदयरमणं भवतीति वा'' ।[74] *''हिरण्यं वक्षसि यस्याः सा हिरण्यावक्षा ।''* औषधरुप और हितकारक सुवर्ण एवं मूल्यवान् रत्नों की आकर होने के कारण यह रत्नगर्भा एवं हिरण्यवक्षा है । अथर्ववेद में वर्णन है कि पृथिवी के अन्दर धन, मणि एवं सुवर्ण विद्यमान हैं–

---

[68] अथर्व. 12/1/10

[69] वही 12/1/63

[70] वही 6/17/1, 7/6/4, 7/18/2, 8/1/12, 8/7/2, 9/10/12, 6/53/1

[71] वही 12/1/61

[72] वही 12/1/1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,16,18,22,23,24,41,43,44,46,47,49,50,52,59,63

[73] उणादि. 4/57

[74] निरु. 2/3

''निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।

वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥'' [75]

विश्वगर्भा–

पृथिवी समस्त प्राणियों, वनस्पतियों, हिमवान् पर्वतों, गिरियों और विविध चराचर जगत् को अपने गर्भ में धारण करती है । यह समस्त नैसर्गिक तत्त्वों की निधि है । पृथिवी शुद्ध जल को अपने में धारण करती है–*''शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु''* [76] यह विविध रसरूप जल पृथिवी माता का दूध है जिससे सभी प्राणियों का पोषण होता है । जल विविध अन्न एवं वनस्पतियां उपजाने का स्रोत है अतः भूमि को *'पयस्वती'* [77] कहा गया है । आकाश पृथिवी का केन्द्र बिन्दु है अतः इसकी प्रथनता भी परम व्योम तक होने पर पृथिवी की व्यापकता व्यक्त होती है *(यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः)* [78] अथर्वा ऋषि ने पृथिवी एवं अग्नि का सम्बन्ध निरुपित करते हुए कहा है कि अग्नि पृथिवी पर जल, वनस्पति, पत्थर, पशु, पुरुष इत्यादि में सर्वत्र व्याप्त है *(अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु, अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः)* [79] । पृथिवी ऊर्जा को सूर्यरूप दिव्य अग्नि से ग्रहण करती है । पार्थिव अग्नि उसी सूर्य के तेज का रूप है अतः पृथिवी को *'वैश्वानर'(वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निम्)* [80] '*अग्निवासा*' *(अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु)* [81] कहा गया है । वायु को 'मातरिश्वा' कहकर इसकी द्विविध गतियों का भी निर्देश किया गया है *(यस्यां वातो मातरिश्वेयते.........वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः)* [82] इस प्रकार यह पृथिवी अहोरात्र, दिशाओं, ऋतुओं, पर्वतों, वन–वृक्षों, पशु–पक्षियों, सरीसृपों एवं प्राणिवर्ग इत्यादि सभी को धारण करने वाली है ।

गुरुत्वाकर्षणवती–

दो पिण्डों के बीच उनके द्रव्यमानों के कारण होने वाले पारस्परिक आकर्षण को गुरुत्वाकर्षण बल कहते हैं । यह सार्वत्रिक बल है । ब्रह्माण्ड में स्थित प्रत्येक पिण्ड दूसरे

---

[75] अथर्व. 12/1/44
[76] वही 12/1/30
[77] वही 12/1/59
[78] वही 12/1/8
[79] वही 12/1/19
[80] वही 12/1/6
[81] वही 12/1/21
[82] वही 12/1/51

पिण्ड के कारण इस बल का अनुभव करता है । पृथिवी में इस गुरुत्वाकर्षण शक्ति का संकेत भूमि सूक्त में यह कहकर किया गया है –*'मल्वं बिभ्रती गुरुभृत्'* [83] अर्थात् यह सभी भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचने वाली और धारण करने की शक्ति वाली है । मुख्यतया यह गुरुत्व बल पृथिवी की चन्द्रमा एवं उपग्रहों द्वारा परिक्रमा, सूर्य की ग्रहों द्वारा परिक्रमा को तथा पृथिवी पर कहीं से भी गिरने वाली वस्तुओं की गति को संचालित करता है । यह गुरुत्वाकर्षण बल ब्रह्माण्ड में तारों, आकाश–गंगाओं और मन्दाकिनीय–गुच्छों के बनने और विकसित होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है । यही नियम बाद में न्यूटन नामक वैज्ञानिक द्वारा 'Three Laws of Motion' नामक सिद्धान्त रूप में विकसित हुआ ।

ध्रुवा, गतिशीला–

पृथिवी सभी प्राणियों को स्थिरतापूर्वक धारण करती है । यह अविचल है, अटल है, *(ध्रुवां भूमिं [84], ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती[85])।* पृथिवी को ध्रुवता प्रदान करने वाले वृहत् सत्य, ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म, यज्ञ ये सात गुण हैं ।[86] ध्रुवा कहने का अभिप्राय यह है कि यह सर्वथा दृढ़ रहती हुई सुन्दर किरणों वाले सूर्य के चारो ओर घूमती है

''वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ।'' [87]

इस पृथिवी का वेग, गति और कम्पन महान् है *(महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे) ।* [88] यह पृथिवी कांपते हुए चलती है ।[89]

क्षमा–

क्षमा (पृथिवी) । 'क्षि' क्षये । क्षायन्ति अवयवं गच्छन्त्यस्यां पदार्था इति वा । 'क्षि'+मानिन्>क्षिमा>क्षमा । [90] प्रकृति के प्रतिकूल किए गये कार्यों को भी यह प्रायः सहन करती है । अतः यह क्षमाकर्त्री एवं सहनशीला है । यह शिला, पत्थर, धूलि, पठार, समतल, ढलान, भूरि, काली, लाल रंगों वाली विविधरुपा है ।

---

[83] अथर्व. 12/1/48
[84] वही 12/1/11
[85] वही 12/1/45
[86] वही 12/1/1
[87] वही 12/1/48
[88] वही 12/1/18
[89] वही 12/1/37
[90] निघ. 1/1/6

अतः राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत 'भूमिसूक्त' में मातृभूमि का यशोगान किया गया है । ऋषि ने 'भूमिसूक्त' में पृथिवी की आधिदैविक और आधिभौतिक दोनों रूपों में स्तुति की है । कहीं भौगोलिक दृष्टि से इसके नैसर्गिक सौन्दर्य का चित्रण है । कहीं पृथिवी के लिये कामदुधा, पयस्वती, सुरभि आदि पदों का प्रयोग किया है । यह विविध रसों वनस्पतियों, औषधियों, खनिज पदार्थों इत्यादि से सबका भरण–पोषण करती है । यह विविधरूपा, वसुधानी, वसुन्धरा, हिरण्यवक्षा, विश्वम्भरा, विश्वगर्भा है । यह समस्त जगत् को बसाने वाली (जगतो निवेशनी), सबको आश्रय देने वाली (विश्वधायसम्), अत्यन्त विस्तृत, सुखदायिनी (स्योना), कल्याणकारिणी (शिवा), धनसम्पत्ति प्रदान करने वाली, दानशीला, शान्तिप्रदा एवं अन्नवती है । यह वैश्वानर अग्नि को धारण करती है । सभी समुद्र, नदियाँ, पर्वत, अरण्य आदि इसी पर विद्यमान हैं । इसी पर समस्त प्राणी सांस लेते हैं । इसी पर चलते फिरते हैं, इसी पर निवास करते हैं । सूर्य, चन्द्रमा, पर्जन्य, इत्यादि दिव्य शक्तियाँ निरन्तर पृथिवी की रक्षा करती हैं । यह प्राणिमात्र के लिये ऊर्जा का महान् स्रोत है । भूमि में अत्यधिक धारण क्षमता और सहनशीलता है । यह अथाह सागर, नदी, विशालकाय पर्वत, भयंकर जीव जन्तु, दुर्गम वन, भव्य नगर, अग्नि, वायु सभी को धारण करती है । सर्दी गर्मी आदि ऋतुओं के परिवर्तनों को सहन करने के पश्चात् भी अक्षुण्ण और अविचल बनी रहती है । उदारशीलता, सहनशीलता, क्षमाशीलता, दानशीलता, आदि गुणों के कारण देवता भी प्रमाद रहित होकर इसकी रक्षा करते हैं–

''यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।'' [91]

द्यावा–पृथिवी सरंक्षण एवं महत्व–

वेदों में द्यावा–पृथिवी के संरक्षण पर विशेष बल दिया है । द्यावा–पृथिवी में सूर्य आदि लोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी तीनों का समावेश है । द्यावा–पृथिवी परस्पर संबद्ध हैं । सूर्य ऊर्जा का स्रोत है, अन्तरिक्ष वृष्टि का कारक है और पृथिवी ऊर्जा और वृष्टि आदि का उपयोग कर अन्नादि की समृद्धि से मानवजीवन को संचालित करती है । वेद के अनेक मंत्रों में द्युलोक को पिता और पृथिवी को माता कहा गया है । यदि द्युलोक या अन्तरिक्ष प्रदूषित होता है तो ऊर्जा के स्रोतों को हानि पहुंचती है और यदि भूमि प्रदूषित होती है तो जीवन संकटापन्न होता है, इसलिए दोनों के संरक्षण पर बल दिया गया है । अथर्ववेद में वर्णन है कि पृथिवी माता है, अन्तरिक्ष भाई है और द्युलोक पिता है । जिस प्रकार माता–पिता की सेवा करना, उनको कष्ट से बचाना और उनकी रक्षा करना पुत्र का कर्तव्य है, उसी प्रकार

---

[91] अथर्व. 12/1/7

प्रकृति की रक्षा करना, उसको प्रदूषण से बचाना एवं उसके उपहारों का सदुपयोग करना हमारा कर्तव्य है–

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ॥'' [92]

''भूमिर्माता... भ्रातान्तरिक्षम्... द्यौर्नः पिता ॥'' [93]

अथर्ववेद में द्यु–भू की उपयोगिता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भूमि हमें हरियाली और सस्य सम्पदा देती है । अग्नि लौहतत्त्व देती है । वृक्ष–वनस्पतियों तथा सूर्य की किरणों का सहयोग लेकर कल्याणकारी शक्ति प्रदान करती है । यह शक्ति आक्सीजन के रूप में प्राप्त होती है ।

''भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।

वीरूद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥'' [94]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में वर्णन किया गया है कि द्युलोक और पृथिवी ऊर्जा प्रदान करती हैं ।

''दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतम् ॥'' [95]

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि पृथिवी हमें मधुर अन्न देती है, द्युलोक अमृत देता है । यह अमृत दो रूपों में है– सूर्य से ऊर्जा एवं प्रकाश तथा बादलों से पवित्र जल । अथर्ववेद में कहा गया है कि द्युलोक, अन्तरिक्ष, औषधियाँ और जल ये सभी हमें मधुरता प्रदान करें–

''येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ॥'' [96]

''मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ॥'' [97]

वेदों में अनेक स्थानों पर द्यु–भू को प्रदूषण मुक्त रखने के निर्देश दिये गये हैं । यह आदेश दिया गया है कि कोई कार्य ऐसा नहीं किया जाए जिससे द्यु–भू को हानि हो । यही भाव यजुर्वेद के अनेक मन्त्रों में प्रस्तुत किया गया है–

---

[92] अथर्व. 12/1/12

[93] वही 6/120/2

[94] वही 5/28/5

[95] यजु. 29/53

[96] ऋ. 10/63/3

[97] अथर्व. 20/143/8

''द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः, पृथिव्या सम्भव ।'' [98]

''दिवं दृंह दिवं मा हिंसीः ।'' [99]

''पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा हिंसीः ।'' [100]

ऋग्वेद के एक मन्त्र में चेतावनी दी गयी है कि द्यु–भू चेतन तत्त्व है, ये हमारे रक्षक हैं यदि इनको प्रदूषित किया जाता है तो विनाश एवं संकट उपस्थित होगा–

''द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।

मा दुर्विदत्रा निर्ऋर्तिन ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥'' [101]

अथर्ववेद के एक प्रसिद्ध मंत्र में सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष, नदी, औषधि इत्यादि से प्रार्थना की गई है कि वे हमारे लिये प्रदूषण मुक्त होकर सुख–शान्ति प्रदान करें–

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।

शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ [102]

द्यु–भू की रक्षा करने पर वह भी हमारी रक्षा करेंगे अर्थात् यदि हम प्रकृति का सहयोग करते हुए द्यु–भू को प्रसन्न रखेंगे तो वे भी हमें सुख प्रदान करेंगे । यदि हम उनका दोहन करेंगे तो वे भी हमें दुःख या विपत्ति देंगे–

''अवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी ॥'' [103]

''मा द्यावा पृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥'' [104]

भूमि सूक्त के प्रथम मन्त्र में पृथिवी को धारण करने वाले सात तत्त्व बताये गये हैं जो इस प्रकार हैं– वृहत् सत्य, ऋत, उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्म तथा यज्ञ ।

---

[98] यजु. 5/43
[99] वही 15/64
[100] वही 13/18
[101] ऋ. 10/36/2
[102] अथर्व. 19/9/1
[103] यजु. 2/9
[104] वही 11/45

''सत्यं वृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥'' [105]

मन्त्र का अभिप्राय है कि किसी भी राष्ट्र के नागरिक अथवा पृथिवी पर निवास करने वाले मानव जब उपर्युक्त गुणों को सम्यक् धारण करेंगे तो इस भूमि का सम्यक् पोषण होगा तथा यह धरा विगत वर्तमान तथा भविष्य की पालनकर्त्री बनकर हमारे लिये विस्तृत लोक उपलब्ध करायेगी । सत्य आदि वे व्रत हैं जिनके पालन से मानव की प्रगति और विकास की सम्भावना विस्तृत होती है । परन्तु आज भौतिक विलासिता पर्यावरण प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण है । मनुष्य पर्यावरणीय साधनों का निर्ममता से दोहन करने लगा है । इस भौतिक विलासिता से मुक्ति पाने का यही उपाय है कि लोगों को वैदिक पर्यावरण का ज़ान हो जिससे सादगीपूर्ण एवं सहज जीवन व्यतीत करने का मार्ग प्रशस्त हो । जिससे प्रत्येक मनुष्य प्रकृति के नियम चक्र को समझ सके तथा उसके स्वाभाविक चक्र को बनाए रखने के लिए अग्रसर हो ।

वैदिक साहित्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को संसार के नियम तथा उसकी रचना के बारे में ज़ान प्राप्त करना चाहिए । सृष्टि निर्माण में छोटे–बड़े सभी पदार्थों का एवं चेतन तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है । ऋग्वेद में कहा गया है कि ईश्वर की इस सृष्टि में लघुत्तम पदार्थ भी बहुत गुण वाला होता है । निःसार क्षुद्र पत्थर भी बहुत फल देता है तथा मादक पदार्थ भी वैद्यानुसार प्रयोग में लाने पर लाभदायक होता है –

''वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।

वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥'' [106]

पर्यावरणीय समस्याओं से मुक्ति दिलाने के लिये सद्विचार एवं सद्वृत्तियाँ अनिवार्य हैं ।

ये सद्विचार ही जीवन को सुखद बनाते हैं इसलिए अथर्ववेद में मानव द्वारा प्रार्थना की गयी है–

''पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मानवो धिया ।

[105] अथर्व. 12/1/1

[106] ऋ. 8/13/32

पुनन्तु विश्वाभूतानि पवमानः पुनातु मा ॥'' [107]

देवपुरूष मुझे पवित्र करें, विचारशील जन अपने सद्विचारों से मुझे पवित्र करें । प्रकृति के सभी तत्त्व मुझे पवित्र करें तथा ईश्वर मुझे पवित्र करें । इस प्रकार आत्मिक शुद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिये वेदों में सम्यक् विचार किया गया है तथा सबकी बुद्धि एवं ज्ञान में वृद्धि की आकांक्षा की गयी है । अथर्ववेद का पहला मन्त्र इस बात की ओर संकेत करता है–

''ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः ।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽद्य दधातु मे ॥'' [108]

रक्षा करने योग्य इस संसार से सम्बन्धित त्रिक् ज्ञान अर्थात् तीन–सप्त (21) के ज्ञान को हम धारण करें । त्रिक से तीन–तीन समूह का अर्थ लिया गया है–

पृथिवी	अन्तरिक्ष	द्यौ
प्रकृति	जीव	परमशक्ति
ज्ञान	कर्म	उपासना
तमस्	रजस्	सत्व
शरीर	मन	आत्मा
श्रवण	मनन	निदिध्यासन
सत्य	यश	श्री

ऋषियों ने समस्त पर्यावरण को समग्रता से देखा तथा सभी पर्यावरणीय तत्त्वों की स्तुति की एवं उनके महत्त्व को स्वीकार किया । उन्होनें पर्यावरणीय तत्त्वों मे देवत्व की स्थापना की तथा तत्त्वों के कार्यों का सदा विचार करते हुए उनकी शक्तियों को सम्मान दिया है । पंचतत्त्वों में पृथिवी का सबसे प्रमुख स्थान है । पृथिवी सब भूतों का रस कहलाती है ।

---

[107] अथर्व. 6/19/1

[108] वही 1/1/1

पृथिवी के समक्ष वर्तमान संकट एवं अथर्ववेदीय उपाय–

अथर्ववेद में पर्यावरण की मुख्य घटक पृथिवी के प्रति पूज्य दृष्टि रखी गयी है और इसकी उपासना का विधान बताया गया है । परन्तु वर्तमान भौतिकता की दौड़ एवं अर्थलोलुपता, वैज्ञानिक अनुसंधान तथा तकनीकी ज्ञान के अनियंत्रित दोहन तथा भण्डारण से भूमि प्रदूषण का संकट बढ़ता जा रहा है । मानव पृथिवी के उपकारों को अपनी भोगप्रधान प्रवृति के कारण शनैः शनैः विस्मृत करता जा रहा है । कीटनाशकों के छिड़काव से पृथिवी के स्वरूप में विषाक्तता बढ़ती जा रही है । पृथिवी के लिये ठोस कचरा भी एक अन्य प्रदूषक है । सम्पूर्ण विश्व के नित्य प्रयोग की वस्तुओं के अपशिष्ट पदार्थ संसार के लिये एक समस्या बन चुके हैं । मानव द्वारा अपसर्जित कचरे को जिस स्थान पर दबाया जाता है वह स्थान कृषि योग्य नहीं रह पाता । वृक्षों के काटने से, ताप उर्जाग्रहों से उड़े धूल–कणों से, भूक्षरण, अविवेकपूर्ण खनन, जल को बड़े बांधों द्वारा रोकने आदि प्रक्रियाओं द्वारा भी पृथिवी का पारिस्थितिकीय सन्तुलन अत्यन्त विकृत हो रहा है ।

पृथिवी संरक्षण हेतु अथर्ववेदीय उपाय को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है ।

1.) सप्तमहाशक्तियों का सम्यक् धारण–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज के वातावरण को दूषित न होने देना उसका पुनीत कर्तव्य है परन्तु ईर्ष्या–द्वेष, छल–कपट, मात्सर्य, लोभ जैसी दुर्भावनाएँ समाज के वातावरण को प्रदूषित करते हैं । इन दुष्ट भावनाओं का परित्याग करना अत्यन्त आवश्यक है । सत्य, ऋत, संकल्प, तप, त्याग जैसे विशिष्ट गुणों का होना अनिवार्य है । इन गुणों से ही पृथिवी को संरक्षित कर सकते हैं, जैसा कि अथर्ववेद में कहा है–

''सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।'' [109]

पृथिवी को सात महाशक्तियाँ धारण करती हैं । वे सात महाशक्तियाँ है–वृहत् सत्य, वृहत् ऋत, उग्र (क्षत्रशक्ति), दीक्षा, तप, ब्रह्मशक्ति, यज्ञ । इन सात गुणों के आधार पर ही पृथिवी का सम्यक् पोषण किया जा सकता है । इनके सम्यक् धारण से ही निरन्तर उन्नति सम्भव है ।

[109] अथर्व. 12/1/1

सत्य– प्रत्येक मनुष्य को सत्य प्रिय होना चाहिए। सत्य क्या है उसे जानने के लाये शान्त, गम्भीर एवं अध्यवसायी होना आवश्यक है ।

ऋतम्– ऋत का अर्थ होता है–यथार्थ ज्ञान । ऋत ज्ञान की सत्यता को द्योतित करता है । सृष्टि सम्बन्धी नियमों का सही बोध होना ही ज्ञान की सत्यता पर अवलम्बित है अतः ऋत विश्व में चल रहे सत्य नियम, उनका सत्य ज्ञान, तदनुसार सत्य आचरण का द्योतक है । प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्माण्ड में काम कर रहे भौतिक और आत्मिक नियमों का ज्ञान होना आवश्यक है । इस ज्ञान के अनुकूल आचरण से भी पृथिवी को संरक्षित किया जा सकता है ।

उग्र– उग्रम्–उच्यति क्रुद्धा समवैति इति उग्रो रौद्रस्वभावः क्षत्रियः । उच समवाये धातोः औणादिकः रन् प्रत्ययः ।[110] उग्र शब्द शक्ति और तेज वाले क्षत्रिय का वाचक है अर्थात् सभी मनुष्यों में तेज और बल रहना चाहिए।

दीक्षा– किसी भी कार्य को दृढ़संकल्प–पूर्वक हाथ में लेने को दीक्षा कहते है। किसी भी कार्य को करने का दृढ़संकल्प लेने पर किसी कष्ट एवं विपत्ति से विचलित नहीं हो एवं किसी भी प्रकार के लालच से न डगमगायें।

तप– जीवन में कष्ट सहिष्णुता और सरलता व सादगी की वृत्ति को तप कहते हैं। पृथिवी को सम्यक् प्रकार से धारण करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को सादा जीवन एवं कष्ट को सहन करने का अभ्यास करना चाहिए।

ब्रह्म– वेद और भांति–भांति की विद्याओं को ब्रह्म कहा जाता है। वेद में समस्त विद्याएं निहित हैं अतः लोक में वेद का प्रचार एवं वेदोपलक्षित भिन्न–भिन्न विद्याओं के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था होनी चाहिए।

''वाग्वै ब्रह्म'' [111]

''स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः'' [112]

यज्ञ– तत्त्वों के पोषण हेतु यज्ञ एक व्यावहारिक प्रक्रिया है तथा ये यज्ञ पर्यावरण शोधन की दृष्टि से भी किये जाते हैं। तत्कालीन समय में वर्ष पर्यन्त ऋतु अनुसार यज्ञ करने के पीछे

---

110 उणा. 2/28

111 शत. ब्रा. 2/1/4/10

112 वही 11/5/6/2

यही कारण था कि एक मौसम से दूसरे मौसम में संक्रमण के कारण पर्यावरण में व्याप्त अनावश्यक जीवाणुओं तथा अन्य विकारों को समाप्त किया जा सके, जिससे पर्यावरण प्राणियों के अनुकूल बना रहे । वेदों में यज्ञ शब्द का अर्थ प्रकृति की प्रत्येक प्रक्रिया से जोड़ दिया गया है जिसका तात्पर्य है– प्रकृति में प्रत्येक पदार्थ की किसी न किसी अन्य पदार्थ में आहुति हो रही है । यही सृष्टि का प्रक्रम है, यही नियम है । यज्ञ सामाजिक सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक दृष्टि से उत्कृष्ट भावनाओं एवं सम्बन्धों को स्थापित करते हैं, वही वैज्ञानिक दृष्टि से वायु को शुद्ध करते हैं ।

''यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।'' [113]

मन्त्र में यज्ञ से तात्पर्य स्थावर–जंगम की अन्योन्याश्रित क्रियाओं के उपक्रम के अनुकूल कार्य करना है अतः मनुष्य का जीवन एक यज्ञ है उसे दैनिक यज्ञ करने होते हैं । उसका सम्पूर्ण जीवन ही यज्ञ समान है ।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है–*'पुरूषो वाव यज्ञः'* । [114] यज्ञ को श्री कृष्ण ने सभी कार्यों का जनक कहा है–

''अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञाद्भवन्ति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥'' [115]

वैदिक चिन्तनानुसार प्रकृति में जितने पदार्थ हैं वे सब इस शारीरिक संसार के आधार हैं । उनमें जिस प्रकार एक–दूसरे में आदान–प्रदान की (यज्ञ) प्रक्रिया चलती रहती है उसी प्रकार शरीर में भी यज्ञ होता रहता है । किन्तु कुछ परिवर्तनों के कारण दोनों में कभी–कभी वैषम्य उत्पन्न हो जाता है, जिसे प्रदूषण कहा जाता है । यज्ञ की शक्ति पृथिवी को सम्यक् पोषित एवं शुद्ध रखती है । पृथिवी को सरंक्षित रखने के लिये व्यक्ति को श्रेष्ठ मानव बनना होगा । दैवीय गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही पृथिवी को प्रदूषण करने वाली आसुरी प्रवृत्तियों से सम्पन्न असुरों को नष्ट कर सकता है ।

''यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।'' [116]

सभी भोग्य पदार्थो को देने वाली पृथिवी की रक्षा आलस्य से रहित वीर पुरूष ही कर सकते हैं–

---

[113] ऋ. 10/90/16
[114] छा. उप. 3/14
[115] श्रीमद्भग. 3/14
[116] अथर्व. 12/1/5

''यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।'' [117]

जो मनुष्य अपनी मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों के बल से पृथिवी निवासियों में घृणा, विद्वेषभाव, हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ एवं स्वार्थभावों को उत्पन्न करते हैं, वे पृथिवी पर प्रदूषण फैलाने वाले तत्त्व हैं । अथर्ववेद में इन दोषों से दूर रहने के लिये प्रेरित किया गया है–

''यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥'' [118]

2.) पृथिवी के साथ प्राणियों का घनिष्ठतम सम्बन्ध–

पृथिवी एवं मनुष्य में माता और पुत्र का घनिष्ठतम सम्बन्ध है । इस सम्बन्ध में जितनी पवित्रता से कर्तव्यबोध का उपदेश दिया जा सकता है, वह अन्यत्र सम्बन्ध में सम्भव नहीं है ।

अथर्ववेद में इस सम्बन्ध के बारे में कहा गया है–

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' [119]

जिस प्रकार माता अपनी सन्तानों का पोषण करती है उसी प्रकार पृथिवी सभी प्राणियों को भोज्य पदार्थ प्रदान करती हुई भरण–पोषण करती है । पृथिवी को विश्वम्भरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा, निवेशनी, वैश्वानर, इन्द्रऋषभा कहा गया है ।[120]

जिस प्रकार माता अपनी सन्तानों को दुग्धपान कराती है उसी प्रकार से पृथिवी माता से दुग्धपान कराने की कामना करते हुए कहा गया है–

''सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ।'' [121]

पृथिवी को धेनु के समान दूध देने के लिए भी कहा गया है–

''सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेवं धेनुरनपस्फुरन्ती ।'' [122]

---

[117] अथर्व. 12/1/7
[118] वही 12/1/14
[119] वही 12/1/12
[120] वही 12/1/6
[121] वही 12/1/10
[122] वही 12/1/45

3.) पृथिवी की स्वाभाविक गन्ध की सुरक्षा–

पृथिवी में गन्ध गुण स्वाभाविक है–*''तत्र गन्धवती पृथिवी''* [123] परन्तु मिट्टी की शक्ति का अनुपात से अधिक प्रयोग करने से तथा कीटनाशक औषधियों एवं कृत्रिम खाद के अत्यधिक प्रयोग से पृथिवी की स्वाभाविक गन्ध की हानि होती है अर्थात् पृथिवी तत्त्व प्रदूषित होने लगता है । भूमि सूक्त के 23, 24, 25 मन्त्र में इस सम्बन्ध में मार्मिक उद्बोधन है –

''यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।

यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥'' [124]

यहां पृथिवी की स्वाभाविक गन्ध पर बहुत जोर दिया गया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि जहां–जहां प्रदूषण है, वहां–वहां यह स्वाभाविक गन्ध तिरोहित रहती है । इस कारण प्राणिजगत् अस्वस्थ हो जाता है, और कभी–कभी भयंकर रोग से ग्रसित हो जाता है । इस प्रदूषण का साक्षात्कार दिल्ली जैसे महानगर में सहज ही किया जा सकता है ।

4.) अत्यधिक खनन जनित भूमि दूषण का समाधान–

भूमि की अत्यधिक खुदाई से पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न होता है । अधिक जुताई करके व लगातार अधिक फसल बोने से भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास होता है । दूषित पदार्थों की भूमि में निकासी एवं मल–मूत्र, कूड़ा करकट आदि के अनियंत्रित विसर्जन से पृथिवी को दूषित करना ही पृथिवी की हिंसा है । भूमि के अनुचित कटाव एवं मैदानी क्षेत्रों में नदी तटों पर वन एवं वृक्षों के काटे जाने से पृथिवी की दृढ़ता कम होती है । अतः अथर्ववेद में भूमि को संबोधित करते हुए कहा गया है कि हे भूमि ! मैं तेरे जिस भाग का खनन करता हूँ, उसकी पूर्ति शीघ्र हो जाये । हे विमृग्वरि (विशेष रूप से शोधन करने वाली) मैं तेरे मर्म स्थल पर प्रहार न करूं–

''यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।

मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥'' [125]

---

[123] त. सं. पृ. 29

[124] अथर्व. 12/1/23

[125] वही 12/1/35

इसका अभिप्राय यह है कि हम पृथिवी से रत्न, पैट्रोल, कोयला आदि जो पदार्थ निकालते हैं उससे रिक्त हुए स्थान की पुन: पूर्ति की जानी चाहिए । पृथिवी के गर्भस्थ तत्त्वों के विखनन की पूर्ति न होने पर असन्तुलन उत्पन्न होता है, जो प्राणिमात्र के लिए हानिकारक है । एक अन्य मन्त्र में प्रजापति से भी पृथिवी की उर्वरा शक्ति की क्षतिपूर्ति के लिए प्रार्थना की गयी है कि जो क्षति हुई है, उसकी न्यूनता को प्रजापति पूर्ण करें–

''त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुधा पप्रथाना ।

यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥'' [126]

अत: जिस प्रकार अश्व अपने शरीर में लगी धूल को झाड़कर दूर कर देता है उसी प्रकार भूमि पर प्रदूषण फैलाने वाला मनुष्य भी त्याज्य है –

''अश्व इव रजो दुधुवे वि ताञ्जनान्य आक्षियन्पृथिवीं यादजायत ।'' [127]

5.) चरित्र शुद्धि–

पृथिवी पर सुख और शान्ति के लिए आचार–विचार एवं चरित्र की शुद्धि भी आवश्यक है । मनुष्य के व्यवहार के दूषित बने रहने से परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, राग, एवं प्रतिशोध की भावना बनी रहती है । जिससे स्वस्थ एवं सन्तुलित प्राकृतिक परिवेश की कल्पना असम्भव है । द्वेष के वशीभूत होकर मानव प्राकृतिक सम्पदा का दुष्प्रयोग करता हुआ पर्यावरण को दूषित करता है । अत: अथर्ववैदिक ऋषि का ध्यान इस बिन्दु पर भी आकृष्ट हुआ एवं इससे बचने के लिए द्वेष रहित होने की चर्चा की गयी है–

''मा नो द्विक्षत कश्चन'' [128]

समाज में सौहार्द्रमय वातावरण बनाने के लिए व्यक्तियों के मन में सद्‌विचार एवं शुभ संकल्पों का होना अनिवार्य है । वेद में प्रार्थना की गयी है–

''तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु'' [129]

---

[126] अथर्व. 12/1/61

[127] वही 12/1/57

[128] वही 12/1/18, 23, 24, 25

[129] यजु. 34/1

मानव जीवन में सभी गुणों का प्रकाश सद्व्यवहार से होता है, अतः भूमि से मधुर भाषण करने वाली बुद्धि की कामना की गयी है । जिससे सभी मधुरतापूर्वक सद्व्यवहार कर सकें–

''ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ।'' [130]

वेद के प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में भी मानव की बुद्धि को उत्तम रूप में व सही दिशा में प्रेरित करने की प्रार्थना की गयी है–

''धियो यो नः प्रचोदयात्'' [131]

अतः आचार विचार की शुद्धि भी समाज में सुख और शान्ति की आधारशिला है ।

6.) भूमि के प्रति कर्तव्य निर्वहन–

प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह पृथिवी के लिए निन्दनीय वचनों का प्रयोग नहीं करे ।

''ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये सङग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥'' [132]

पृथिवी की हिंसा के प्रति अग्रसर न हों । यजुर्वेद में पृथिवी को माता का सम्बोधन करते हुए कहा गया है कि हे भूमि माता ! तुम हमारी हिंसा मत करो हम भी तुम्हारी हिंसा न करें ।

''पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो अहं त्वाम् ।'' [133]

जो मनुष्य या राष्ट्र पृथिवी की हिंसा करते हैं, पृथिवी भी उसकी हिंसा कर देती है । पाकिस्तान नें परमाणु परीक्षण अफगानिस्तान की सीमा के पास किया था, कुछ समय पश्चात् भूचाल के कारण हजारों व्यक्ति काल के गाल में चले गये । 16/8/1999 को तुर्की में भी हजारों लोग भूचाल से मृत्यु को प्राप्त हुए ।

---

[130] अथर्व. 12/1/16

[131] यजु. 36/3

[132] अथर्व. 12/1/56

[133] यजु. 10/23

पृथिवी की क्रोध दृष्टि हम पर न हो । पृथिवी यदि प्रदूषण द्वारा रुष्ट हो जाएगी तो प्राकृतिक आपदायें प्रारम्भ हो जायेंगी जैसे अकाल, महामारी, ऊर्जा स्रोतों का नाश, अतिवृष्टि आदि । हमें भूमि को प्रदूषित करने वाले कर्म नहीं करने चाहिए । हम पवित्र कर्म करने वाले हों ।

''शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।

पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ॥'' [134]

ब्रह्म के द्वारा निर्मित भूमि के भोग्य पदार्थों से युक्त होने से ही मानवीय जीवन का सम्यक् निर्वाह सम्भव है । प्राणवान् आयु से युक्त वृद्धत्व को प्राप्त होने की कामना करते हुए कहा गया है–

''भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।

सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥'' [135]

इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव जीवन प्रदूषण रहित भूमि पर ही पूर्ण आयु प्राप्त कर सकता है । प्रदूषण से युक्त भूमि के कारण मनुष्य असाध्य रोग से ग्रसित हो जाता है तथा अल्पायुवान् होता है । अतः प्रदूषण रहित भूमि का चित्रण करते हुए कहा गया है–

''उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥'' [136]

अर्थात् हे भूमे ! तुझसे उत्पन्न सभी लोग सम्पूर्ण रोगों से रहित तथा विशेष रूप से क्षय रोगरहित, दीर्घायु, बुद्धिमान्, जागृति सम्पन्न रहें तथा मातृभूमि के हित के लिए अपने निज स्वार्थ की बलि देनें में उद्यत रहें । सभी प्रकार से तुम्हारा हित करने में तत्पर रहें ।

प्राचीन ऋषियों का चिन्तन पर्यावरण में किसी प्रकार के प्रदूषण का स्वागत नहीं करता है । यह पृथिवी सुन्दररूपवाली, शान्तिकारक, सुगन्धयुक्त, सुख देने वाली, अन्न देने वाली एवं कल्याणमयी है । पृथिवी संरक्षण मानव का कर्तव्य है और वह तभी सम्भव है जब वह प्रतिबद्ध होकर पृथिवी के रक्षार्थ सेवा, त्याग, अपरिग्रह इत्यादि से पूर्णता को

---

[134] अथर्व. 12/1/30
[135] वही 12/1/22
[136] वही 12/1/62

सम्पन्न करने में सहयोग प्रदान करे । पृथिवी मातृरूपा आदरणीया एवं संरक्षणीया है । अतः इन प्राकृतिक स्रोतों के प्रति चेतना में देवभाव विकसित हो, जिससे हम इनके संवर्धन हेतु तत्पर रहें ।

संपूर्ण पर्यावरण में शान्ति व व्यवस्था की कामना को प्रस्तुत करने वाला यह मन्त्र उल्लेखनीय है–

''द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।'' [137]

[137] यजु. 36/17

तृतीय अध्याय

पृथिवी की वैश्विक अवधारणा एवं गाया परिकल्पना

(Gaia hypothesis)

वैदिक परम्परा एवं ताओ (Tao) परम्परा–

प्राचीन समय से ही व्यक्ति अपने चारों ओर की वस्तुओं को देखकर यह जानने के लिए उत्सुक रहा है कि यह समस्त वस्तुएं किससे बनी हैं ? इनका वास्तविक स्वरूप क्या है ? चट्टान के किसी भाग को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अंश में विभाजित करने पर भी प्रत्येक अंश का अपना अलग–अलग आयाम, लम्बाई, चौड़ाई तथा द्रव्यमान होता है । प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या यह अनन्तिम प्रक्रिया है ? क्या इसके पश्चात् कोई अन्तिम अंश है जिसका विभाजन संभव नहीं है ? प्रारम्भिक दार्शनिकों के मध्य इस प्रकार की समस्याएं उद्घाटित हुई । इनके अनुसार लघुत्तम अणु आधारभूत संरचना थी जिसे उन्होंने भिन्न नामों से अभिहित किया । इसी संरचना के विषय में भिन्न–भिन्न विचार प्रतिपादित किये गये ।

वैदिक दर्शन में कारण–कार्य सिद्धान्त के अनुसार यह संसार मूल चेतन तत्त्व की अभिव्यक्ति मात्र है । किसी वस्तु की उत्पत्ति शून्य या अत्यन्ताभाव (Absolute negation) से नहीं होती है । जिस मूल तत्त्व से किसी वस्तु की रचना होती है, उस तत्त्व को उपादान कारण, अधिष्ठान या कारण कहते हैं । ऑक्सीजन और हाइड्रोजन गैस मिलकर जल बनता है अतः ऑक्सीजन और हाइड्रोजन उपादान कारण एवं जल कार्य है । अभाव उत्पत्ति का बोधक नहीं है । विद्यमान से ही रूपान्तरित होकर भाव का बोध होता है । सांख्य दर्शन ने इस सिद्धान्त को सूत्रों में निहित किया है–

''शक्तस्य शक्यकरणात्'' [138]

''कारणभावाच्च'' [139]

अवस्तु से, शून्य से तथा अभाव से वस्तु उत्पन्न नहीं होती । उपादान कारण के अभाव में परिणाम अर्थात् अभाव से भाव की उत्पत्ति असंभव है । उत्पत्ति सत्ता की नहीं, नये रूप व नाम की होती है । गन्ना नाम के रूप का लोप होने पर रस नाम के द्रव्य का प्रादुर्भाव होता

---

[138] सां. सू. 1/117

[139] वही 1/118

है । इसी प्रकार रस नाम के रूप का लोप होता है तब गुड़ नामक रूप समुद्भूत होता है । एक रूप के लुप्त होने पर सत्ता दूसरे रूप में प्रकट हो जाती है । सांख्य दर्शन में कहा गया है–

''नाशः कारणलयः''[140]

नाश परिवर्तन मात्र है और भौतिक सत्ता अविनाशी है । एक ही सत्ता को विद्वान् अनेक नामों से पुकारते हैं ।

''एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ॥'' [141]

वेद में विज्ञान एवं दर्शन का अभूतपूर्व समन्वय है । इसमें सृष्टि, उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय की रूपरेखा सम्बन्धी रहस्यों को प्रकाश में लाया गया है । यह सृष्टि कैसे आयी, क्यों आयी, इसका द्राव्यिक कारण क्या है, इसके पीछे कौन–कौनसी शक्तियां कार्यरत हैं, आदि प्रश्नों से उत्पन्न विषयों पर वैदिक ऋषियों का दृष्टिकोण वेदों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित है । सृष्टि विकास के रहस्यों की क्रमबद्ध रूपरेखा वेद के मन्त्रों में सुरक्षित है । इस प्रकार सृष्टि उत्पत्ति एवं पृथिवी स्वरूप विषय पर वैदिक ऋषियों की एक पूर्ण परिकल्पना *(Hypothisis)* है, एक सम्पूर्ण दर्शन है । ऋग्वेद सर्वव्यापक, निराकार, चेतन सत्ता को प्रतिपादित करता है ।

''ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥'' [142]

ऋचाओं के प्रतिपाद्य जिस अविनाशी परम आकाशवत् व्यापक में समस्त देव पूर्ण रूप से स्थित है, जो इस परम तत्त्व को नहीं जानता वह ऋचा से क्या करेगा ? जो उसे जानते हैं वे ही इन ऋचाओं में सम्यक् स्थान पाते हैं ।

वेद में अदिति शब्द मूल तत्त्व के लिये ही अधिकतर प्रयुक्त हुआ है अर्थात् अदिति शब्द मूल तत्त्व का ही प्रतीक है, किन्तु कहीं–कहीं यह अखण्ड अर्थ में प्रवाह से शाश्वत सत्ता जैसे माता, पिता, पृथिवी, आकाश, लोक आदि के प्रवाह से सनातन स्वरूप को

---

[140] सां. सू. 1/121

[141] ऋ. 10/114/5

[142] वही 1/164/39

दर्शाने के लिये भी हुआ है ।[143] मूल तत्त्व की प्रथम अवस्था अदिति है, मूल तत्त्व की द्वितीय अवस्था क्रियात्मक (आप:) है । मूल आद्या अवस्था द्युलोक, पृथिवी, देवों, असुरों से परे है, क्योंकि ये सभी द्युलोक, पृथिवी, देवता आदि मूल से ही उत्पन्न हुए हैं, मूल के ही परिणाम हैं । अतः मूल ही सबका कारण होने से सर्वश्रेष्ठ है, सबके परे है ।

''परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।

कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥'' [144]

द्युलोक से परे, इस पृथिवी से परे, देवों (महाभूतों) से परे, असुरों (सूक्ष्मभूतों) से परे जो है, उस सर्वप्रथम आद्या शक्ति के गर्भ को आपः धारण करती हैं, जहां सभी देव एक दूसरे को एक ही रूप में देखते हैं । सभी देव सृष्टिकाल में मूल तत्त्व से उत्पन्न होते हैं एवं मूल में ही प्रलय काल में लीन हो जाते हैं । देवों का उपादान कारण प्रकृति की क्रियाशील अवस्था आपः है अतः ऋग्वेद में कहा गया है –

''अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनुकेतमायन् ॥'' [145]

विविधता की इच्छा करते हुए मूल क्रियात्मक तत्त्व समुद्भूत हुआ । समस्त देवों की उत्पत्ति का स्रोत अनन्य है, एकाश्रयी है, अभिन्न है, उसी स्रोत, मूल शक्ति प्रकृति को अनेक नामों से अभिहित किया गया है –

''एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।'' [146]

एक ही सत्ता की कल्पना अनेक प्रकार से करते हैं । प्रश्नोपनिषद् में भी व्यक्त किया गया है कि रयि एवं प्राण एक ही चेतना के दो भाग हैं–

''कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ।''

''तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यस्त स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।''

''यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ।'' [147]

---

[143] ऋ. 1/89/10
[144] वही 10/82/5
[145] वही 4/26/2
[146] वही 1/164/46
[147] प्रश्नो. 1/3,4,5

कात्यायन कबन्धी ने पिप्पलाद के पास जाकर पूछा भगवन् यह सारी प्रजा किससे उत्पन्न होती है ? ऋषि पिप्पलाद ने उत्तर दिया– प्रजापति से । प्रजा उत्पन्न करने वाले प्रजापति ने तप करके रयि प्राण यह जोड़ा उत्पन्न किया । आदित्य ही प्राण है और रयि ही चन्द्रमा है । यह जो कुछ मूर्त (स्थूल) और अमूर्त (सूक्ष्म) है वह सब रयि ही है । अत: इस प्रकार मूल रूप (प्रजापति) ही मिथुन रूप हो गया । एक ही सत्ता दो भागों में विभक्त हो गयी । इसी प्रकार *Taoism* भी अभिव्यक्तिवाद में विश्वास करता है तथा उद्घोष करता है कि संसार परम सत्ता 'Tao' का ही व्यक्त रूप है यह संसार है –

''There are the three terms-'Complete', 'all-embracing', 'The whole' . These names are different, but the reality sought in them is the same: referring to the one thing.'' [148]

Taoism में मूल तत्त्व *'Tao'* है यही सर्वोच्च ब्रह्माण्ड का आदि कारण है, जिस प्रकार वैदिक चिन्तन में 'ब्रह्म' (चेतना) समस्त सृष्टि का आदि स्वरूप है ।

''Tao is the ultimate, undefinable reality ...... Tao is the the cosmic process in which all things are involved; the world is seen as a continuous flow and change ." [149]

Taoism के अनुसार भी *Yin* तथा *Yang* नामक दो शक्तियां (जो 'Tao' से अभिव्यक्त होती हैं) के पारस्परिक अन्त:क्रिया के फलस्वरूप ही अनेकात्मक सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है । *FRITJOF CAPRA* इस सम्बन्ध में उद्धृत करते हैं–

''In the Chinese view, all manifestation of the Tao are generated by dynamic interplay of these two polar forces..... The original meaning of the words 'yin' and 'ying' was that of the shady and sunny sides of a mountain, a meaning which gives a good idea of the reality of two concept ." [150]

Taoism में भी परमसत्ता अस्पष्ट तथा अव्याख्येय है । उसी परम सत्ता *Tao* के दो रूप *Yin* तथा *Yang* द्वारा सृष्टि विभिन्न रूप में दृष्ट है ।

''In Taoism the ultimate base of the world is considered as an indistinct, inexplicable spiritual background, which at the time of emergence of the world develops in to um (yin similar to um in korea) and yang diversities which

---

[148] Chuang Tzu,op.cit.ch.22 (The Tao of Physics p. 116)
[149] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p. 117
[150] वही, पृ. 118

becomes responsible for the natural phenomena, forces and things of the universe. In the Upanisads also for the development of the universe, the spiritual entity at the base of the universe is superimposed on the being as an ego-force which is responsible there after to create the multiple dichotomics and polarities in the form of diverse forces and thing of the world.'' [151]

उपनिषद् के अनुसार पंच तत्त्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) द्वारा ही ब्रह्माण्ड की सभी जड़ एवं चेतन की अभिव्यक्ति होती है । *Taoism* में भी पांच तत्त्व से ही सृष्टि निर्माण हुआ है वह है *Fire* (अग्नि), *Water* (जल), *Earth* (पृथिवी), *Wood* (लकड़ी), *Metel* (धातु) । वैदिक दर्शन में पृथिवी में ही धातु लकड़ी इत्यादि का समावेश हो जाता है । Taoism के तीन तत्त्व *Fire, Water, Earth* की समानता छान्दोग्योपनिषद् के अप्, तेजस् एवं अन्न से होती है जहां यह कहा गया है कि इन तीन का व्यक्त रूप ही संसार है –

''यदग्ने रोहितरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥'' [152]

लोक में त्रिवृत्कृत (तीन तत्त्वों से मिश्रित) अग्नि का जो रोहित रूप प्रसिद्ध है वह अत्रिवृत्कृत तेज का रूप है । उस अग्नि का जो शुक्ल रूप है वह तीन तत्त्वों के सम्मिश्रण से रहित केवल जल का है और उसी का जो कृष्ण रूप है वह अन्न का अत्रिवृत्कृत पृथिवी का रूप है ।

सांख्य के सत्कार्यवाद के विपरीत **न्याय–वैशेषिक** असत्कार्यवाद को मानते हैं । कार्य उत्पत्ति पूर्व असत् है, वह अपने कारण में विद्यमान नहीं रहता है । कार्य नई उत्पत्ति व नूतन सृष्टि है और उत्पत्ति से ही उसकी सत्ता का आरम्भ होता है । असत्कार्यवाद को आरम्भवाद भी कहते हैं । वैशेषिक के अनुसार परमाणु जगत् का कारण हैं । इस जगत् के सम्पूर्ण भौतिक पदार्थ सावयव और उत्पत्ति–विनाशशील हैं तथा नित्य परमाणुओं के संयोग से बनते हैं । पदार्थ की उत्पत्ति का अर्थ है– परमाणु संयोग और विनाश का अर्थ है– परमाणु संयोग विभाग । सृष्टि के मूल तत्त्व परमाणु नित्य हैं । यह परमाणु अतीन्द्रिय, अविभाज्य और नित्य भौतिक द्रव्य हैं । भौतिक पदार्थों के अवयवों का विभाजन किया जा सकता है एवं इन विभक्त अवयवों को पुन: अन्य अवयवों में विभक्त किया जा सकता है तथा अनवस्था दोष से बचने के लिए अन्तिम अवयवों को स्वयं में निरवयव व अविभाज्य माना है ।

---

[151] JHA, RAMNATH, THE PHILOSOPHY OF UPANISADS AND TAOISM PREVAILING IN KOREAN CULTURE, INDIAN AND KOREA THROUGH THE AGES, P. 375-376

[152] छा. उप. 6/4/1

वैशेषिक दर्शन के अनुसार परमाणु चार प्रकार के होते हैं– पार्थिव, जलीय, तैजस् और वायवीय । आकाश विभु, एक और नित्य है । यह परमाणु के संयोग और विभाग के लिए अवकाश प्रदान करता है । प्रत्येक नित्य परमाणु में अपना विशेष होता है जो उसका नित्य और व्यावर्तक है । इसके अतिरिक्त परमाणुओं में गुण–भेद और संख्या–भेद भी होता है । वायु के परमाणु सूक्ष्मतम हैं जिसमें स्पर्श गुण रहता है । तैजस् परमाणुओं में रूप और स्पर्श, जल के परमाणुओं में रस, रूप, स्पर्श तथा पार्थिव परमाणुओं में गन्ध, रस, रूप और स्पर्श ये चारों गुण समाहित होते हैं । परमाणु स्वभावतः क्रियाशून्य और निःस्पन्द होते हैं । इनमें आद्य स्पन्दन या गति ईश्वर सञ्चालित 'अदृश्य' से आती है । परमाणु में आद्य स्पन्दन होते ही एक परमाणु दूसरे परमाणु से जुड़कर द्वयणुक बन जाता है । तीन द्वयणुक से त्र्यणुक और चार त्र्यणुकों से चतुर्णुक बनते हैं । इसी प्रकार यह क्रम चलता है एवं स्थूल महाभूत आदि की उत्पत्ति होती है ।

प्राचीन यूनानी परम्परा में पृथिवी का स्वरूप–

प्राचीन यूनानी संस्कृति में भी प्रकृति रचना सम्बन्ध में मातृदेवी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस संस्कृति के विकास में यह तथ्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि अधिकांश क्षेत्रों में उर्वर भूमि, वनों से ढके पर्वत तथा समुद्र की निकटता सभी एक साथ विद्यमान है । उत्खनन में प्राप्त अनेक नारी मूर्तियों से यह स्पष्ट होता है कि मिनोअन धर्म में परवर्ती यूनानियों के विपरीत देवियों का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण था । उत्तरपाषाणकालीन क्रीट से भी छोटी–छोटी मूर्तियां मिली हैं, जिन्हें उर्वरा शक्ति से सम्बन्धित मातृदेवी की मूर्तियां माना गया है । अतः यह स्पष्ट है कि मिनोअनों के आगमन के पूर्व ही क्रीट में मातृदेवी की महत्ता प्रतिष्ठापित हो चुकी थी । मिनोअनों ने भी उसी परम्परा को अपनाया ।

कृषि पर आधारित समाज में मातृदेवी का महत्त्व होना स्वाभाविक था । मिनोअनों ने मातृदेवी को पृथिवी की उर्वरा शक्ति का प्रतीक मानने के साथ–साथ कृषक समाज की समृद्धि बढ़ाने वाले वानस्पतिक और पशु–जगत् दोनों की स्वामिनी स्वीकार किया ।[153]

अतः केवल मात्र मां ही नहीं, पर्वत, सर्प तथा पशुओं की संरक्षिका आदि विविध रूपों में उसकी कल्पना की गयी है । अथर्ववेदीय भूमि सूक्त में भी इसे पुष्टिकारक, रोग विनाशक, औषधि एवं वनस्पति से युक्त माना गया है ।

---

[153] अरोडा, उदय प्रकाश, प्राचीन यूनान इतिहास और संस्कृति, पृ. 45

''नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति नः प्रथतां राध्यतां नः ।'' [154]

कृषक जनता के लिए पृथिवी ही महत्त्वपूर्ण है । पृथिवी ही उसका निवास तथा वही जीविका का साधन है । पृथिवी की उर्वराशक्ति का लाभ लेने के लिए कृषक को अपना सम्पूर्ण श्रम और ध्यान पृथिवी की ओर लगाना होता है । पुरुष सहायक की भूमिका यहां अत्यन्त गौण होती है । अतः भूमध्यसागरीय संसार में सर्वत्र पृथिवी और जन्मदायिनी उर्वराशक्ति की प्रतीक मातृदेवी का महत्वपूर्ण स्थान रहा । पृथिवी के जीवित होने का दृष्टिकोण बहुत प्राचीन है, मानवीय धार्मिक परम्परा में पृथिवी की छवि भी बहुत पुरानी है ।

''Mythical images of the Earth Mother are among the oldest in human religious history. Gaia, the Earth Goddess was revered as the supreme deity in early, Pre-Hellenic Greece.'' [155]

प्राचीन यूनानी परम्परा में Gei (Gaia) के अतिरिक्त अनेक देवी देवता (Zeus, Paseidon, Hades, Apollo, Artemis, Aphrodite, Ares, pionysus, Hepheastus, Athena, Hermes, Demeter) प्रसिद्ध रहे जिनमें Gaia का महत्वपूर्ण स्थान है । गाया शब्द पृथिवी का ही काव्यात्मक रूप है–

''Gaia:- gei or gai from ancient Greek. Aia a poetical from and or Earth'' [156].

इंडो–यूरोपियन यूनानियों के आगमन के पूर्व क्रीट और यूनान में मातृदेवी की ही पूजा विविध रूपों में प्रमुखता से की जाती थी । आक्रमणकारी यूनानियों ने सर्वोच्च महत्ता मातृदेवी को नहीं अपितु पुरुष देवता को प्रदान की, जो आकाश, ऋतु और वर्षा का प्रतिनिधित्व करता था । मातृदेवी प्रधान मिनोअन जनता और पुरुष देवता प्रधान यूनानी संस्कृति के सम्पर्क का उल्लेख यूनानियों ने अपनी कथाओं के माध्यम से किया है । नवागंतुक यूनानियों ने स्थायी रूप से बसने के बाद स्थानीय जनता को अपने साथ मिलाने का कार्य आरंभ किया । इस प्रकिया में उन्होने अपने सर्वोच्च देवता ज़ीयस की विभिन्न देवियों के साथ विवाह की कथाएं गढीं । ये देवियां विभिन्न स्थानीय देवियां थी । ज़ीयस का दीमीतर, हेरा आदि देवियों के साथ संसर्ग होना इसी ऐतिहासिक तथ्य को प्रकट करता है । यूनानी आर्तमिस (Artemis), दीमीतर (Demeter), एथेना (Athena), हेरा, आदि के रूप में भी मातृदेवी की पूजा करते थे । कृषि और हरीतिमा की प्रतीक मातृदेवी की उर्वरा

---

[154] अथर्व. 12/1/2

[155] Spretnak, Charlene, Lost Goddesses of Early Greece, p.30, (The Web of Life p. 22)

[156] En.wikipedia.org/wiki/Gaia_(mythology)#cite_note-1

शक्ति वर्षा करने वाले आकाशदेव ज़ीयस द्वारा ही बढ़ाई जा सकती थी । यदि पृथिवी माता है तो उसे फलवान् बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पुरुष देवता के साथ उसके संसर्ग की कल्पना की जाए । इस प्रकार वरुण देवता के समान ज़ीयस को माना जा सकता है । INDIAN HISTORICAL REVIEW में भी भारतीय तथा प्राचीन यूनानी सभ्यता में मातृदेवी की सत्ता के सम्बन्ध में समानता स्वीकार की गयी है–

''In both (Minoan and Indian) religions we evidently have a Mother Goddess as the supreme divinity.'' [157]

अथर्ववेद (भूमि सूक्त) में 'ऋत' पृथिवी को सम्यक् रूप से धारण करता है । ऋत का अर्थ है ब्रह्माण्डीय नियम । सूर्य तथा चन्द्रमा भी प्राकृतिक नियमों में निबद्ध हैं । वैदिक चिन्तन में जो ऋत की अवधारणा है उसी प्रकार ग्रीक परम्परा में ***Logos*** शब्द दिया गया है, जिसका अर्थ भी प्राकृतिक नियमों से ही लिया जाता है–

''Logos, which permeates through almost the whole of Greek thought. It is a devine principle, a divine order, logical, rational, systematic and coherent which permeates the whole universe, runs it and holds it together. Logos forms the very basis of the Greek thought.'' [158]

प्रारम्भिक यूनानी दर्शन प्रकृति के सम्बन्ध में एक दृढ़ दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार समस्त तत्त्वों में देवत्व सन्निहित है । यूनानी दार्शनिक थेलिस (Thales) ने जल को ही समस्त सृष्टि का मूल माना । थेलिस के दर्शन में विस्तार पूर्वक जीव और मानव का उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु थेलिस चुम्बक में आत्मा के वास को स्वीकारते थे, इसलिए इनके अनुसार चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकर्षित करता है । थेलिस सभी चर और अचर में प्राणशक्ति के सन्निहित होने को स्वीकारते थे ।

''Thales declared all things to be full of gods'' [159]

प्रारम्भिक यूनानी दर्शन में जड़ सम्बन्धी कोई अवधारणा नहीं है–

''The Milesians were called 'hylozoists' or those 'who think matter is alive' by the latter Greeks, because they saw no distinction between animate and inanimate, sprit and matter. In fect, they did not even have a word

---

[157] Costis, Davaras, The Indian historical Reviw, 'Bronze age crete and india', p. 128

[158] Tripathi, Gaya Charan, *'Yavanika'*, Indian society for Greek and Roman Studies, vol.14, 2012, p. 12

[159] Capra, fritjof, The Tao of Physics, p. 25

for matter, since they saw all forms of existence as manifestations of the 'physis' endowed with life and spirituality.'' [160]

अनैक्सीमैंडर (Anaximander 611-527 ई. पू.) के अनुसार जल, अग्नि तथा वायु में से किसी को भी मूल तत्त्व स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इन तत्त्वों के गुण परस्पर विरोधी होते हैं । परम द्रव्य अपरिमित, नित्य, अनिश्चित तथा अस्पष्ट तत्त्व है, जिससे सभी विविध और विभिन्न प्रकार की वस्तुएं समुद्भूत हुई हैं । यह सभी वस्तुएं अन्त में उसी में विलीन हो जाती हैं–

''Anaximander saw the universe as a kind of organism which was supported by 'pneuma' the cosmic breath, in the same way as the human body is supported by air'' [161]

अनैक्सीमिनिज (Anaximenes 588-424 ई. पू.) ने विश्व की व्याख्या वायु द्वारा की है । पार्मिनाइड्स (Parmenides) भी परमाणु को नित्य शाश्वत सत्ता स्वीकार करते हैं और इनके अनुसार केवल भाव (being) ही परम सत् है । हेराक्लिटस (Heraclitus) अनुसार परम सत्ता गतियुक्त (चलायमान), सम्भवन (becoming) है । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन यूनानी विचारधारा एवं वैदिक दर्शन में सृष्टि के प्रत्येक अंश में चेतना के विस्तार को स्वीकार किया गया है ।

सृष्टि रचना और परमाणु के सन्दर्भ में ल्यूसिपस (Leucippus) एवं डेमोक्रिटस (Democritus) की अवधारणा भिन्न है । ल्यूसिपस के अनुसार प्रत्येक परमाणु स्वतः संचालित रहते हुए अनवरत रहता है इसे संचालित करने के लिए किसी शक्ति की आवश्यकता नहीं है । परमाणु के स्वतः निरन्तर गति के सन्दर्भ में यह मत अरस्तू को स्वीकृत नहीं था । ल्यूसिपस के शिष्य डेमोक्रिटस ने परमाणुवाद को एक व्यवस्थित रूप दिया । डेमोक्रिटस ने इन्द्रियानुभव से प्राप्त विचारों के आधार पर ही परमाणु सम्बन्धी संकल्पना दी जिसको निम्न बिन्दुओं के आधार पर व्यक्त किया जा सकता है–

- संसार के प्रत्येक पदार्थ अनेक सूक्ष्म अंशों से निर्मित है, जिन्हें परमाणु कहा जाता है
- यह परमाणु भौतिक रूप से अविभाज्य है ।

---

[160] Capra, Fritjof, The Tao of physics, p. 24-25

[161] वही, p. 25

- परमाणुओं के मध्य शून्य स्थान रहता है ।
- परमाणु सर्वदा गतिशील रहते हैं, इनका कभी नाश नहीं होता ।
- संसार में आकार व आकृति से भिन्न–भिन्न अनेक प्रकार के अनन्त संख्यक परमाणु हैं ।
- संसार में परिवर्तन अत्यंत सूक्ष्म परमाणु की गति के कारण ही घटित होता है ।

''This concept of the atom, the smallest indivisible unit of matter, which found its clearest expression in the philosophy of Leucippus and Democritus. The Greek atomists drew a clear line between sprit and matter, picturing matter as being made of several basic building blocks.'' [162]

वैशेषिक परमाणुवाद का ल्यूसिपस और डेमोक्रिटस के ग्रीक परमाणुवाद से इस बात में साम्य रखता है कि दोनों के अनुसार परमाणु निरवयव, अविभाज्य, अतीन्द्रिय, और नित्य भौतिक द्रव्य है तथा इस जड़ जगत् के उपादान कारण हैं । भिन्नता निम्न रूपों में है–

- ग्रीक परमाणुवादी परमाणुओं में केवल संख्या भेद मानते हैं । वैशेषिक परमाणुओं में संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों भेद स्वीकार करते हैं ।
- ग्रीक मत में परमाणु स्वभावतः सक्रिय हैं । वैशेषिक मत में परमाणु स्वभावतः निष्क्रिय हैं और उनमें गति अदृष्ट से आती है ।
- ग्रीक मत में आत्मा अणुओं से बनी है । वैशेषिक अनुसार आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है और वह अणु रूप नहीं होकर विभु और नित्य है ।

प्रकृति और पृथिवी चिन्तन सम्बन्धी परम्परा में सभी दार्शनिक विचारधाराएं स्व–अनुभवानुसार पृथिवी को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करते हैं । वैदिक ऋषि तथा प्राचीन यूनानी दर्शन भूमि को चेतन मानते हैं । परवर्ती यूनानी परम्परा (ग्रीक परमाणुवादी ल्यूसिपस एवं डेमोक्रिटस) पृथिवी को जड़ स्वीकार करते हैं तथा इसी का विकसित रूप पारम्परिक भौतिकी में द्रष्टव्य है ।

पारम्परिक/चिरसम्मत भौतिकी में पृथिवी सम्बन्धी दृष्टिकोण–

विज्ञान किसी भी वस्तु के अस्तित्त्व को सिद्ध करने के लिए समुचित साधनों का उपयोग कर अनुभूत सिद्धान्तों को सर्वसमक्ष प्रस्तुत करता है । विज्ञान प्रकृति में घटित

[162] Capra, Fritjof, The Tao of physics, p. 26

क्रिया प्रतिक्रिया को विधिपूर्वक जानने, परीक्षण करने तथा प्रयोग करने पर बल देता है अत: विज्ञान के निष्कर्ष स्पष्ट स्वीकार किये जाते हैं । विज्ञान की विभिन्न शाखाएं हैं यथा– भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि । प्रकृति से सम्बन्धित विज्ञान–क्षेत्र की एक विशाल शाखा के रूप में 'भौतिकी' अथवा 'भौतिक शास्त्र' प्रसिद्ध है । भौतिकी को अंग्रेजी में 'Physics' कहते हैं जो ग्रीक भाषा के 'physis' से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है– प्रकृति के सभी तत्त्वों के मूलभूत स्वभाव को जानने का प्रयास ।

''The term 'Physics' is derived from this 'Physis' Greek word and meant therefore, originally, the endeavour of seeing the essential nature of all things.'' [163]

भौतिकी के अन्तर्गत विविध भौतिक परिघटनाओं की व्याख्या कुछ संकल्पनाओं एवं नियमों के आधार पर किये जाते हैं । भौतिकी के द्वारा प्राकृत जगत् तथा उसकी अंत:क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है । स्थान, काल, गति, द्रव्य, विद्युत, प्रकाश, ऊष्मा तथा ध्वनि इत्यादि अनेक विषय इसके अन्तर्गत आते हैं ।

जगत् के स्वरूप एवं संरचना के क्षेत्र में भौतिक विज्ञान के दो प्रमुख आयाम का अध्ययन किया जाता है–

1) पारम्परिक/ चिरसम्मत भौतिकी (Classical Physics)
2) आधुनिक भौतिकी (Modern Physics)

भौतिकी के मूल रूप में दो प्रभाव क्षेत्र हैं– स्थूल व सूक्ष्म । स्थूल प्रभाव क्षेत्र में प्रयोगशाला, पार्थिव तथा खगोलीय स्तर की परिघटनायें सम्मिलित होती हैं । सूक्ष्म प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत पारमाणवीय, आणविक तथा नाभिकीय परिघटनायें आती हैं । 19वीं शताब्दी से पूर्व जो भौतिक ज्ञान अर्जित किया गया था और तत्सम्बन्धी जो नियम व सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये, उनका समावेश पारम्परिक/ चिरसम्मत भौतिकी में किया गया है । उस समय की विचारधारा के प्रेरणास्रोत गैलीलियो (Galileo Galilie 1564- 1642) तथा न्यूटन (Issac Newton 1642- 1727) थे । पारम्परिक भौतिकी के अन्तर्गत मुख्य रूप से स्थूल परिघटनाओं पर विचार किया गया है, जिसमें यांत्रिकी (Machanics), विद्युत–गतिकी (Electro-dynamics), और प्रकाशिकी (optics) जैसे विषय सम्मिलित होते हैं । यान्त्रिकी विषय न्यूटन के गति के नियमों तथा गुरुत्वाकर्षण के नियमों पर आधारित है ।[164] कणों की

[163] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p. 24
[164] भौतिकी, पृ. 3

गति के सम्बन्ध में दिये गये न्यूटन के सिद्धान्त तथा विकिरण उर्जा के सम्बन्ध में दिये गये मैक्सवेल के सिद्धान्त पारम्परिक यान्त्रिकी के अन्तर्गत आते हैं ।

17वी शताब्दी में रेने देकार्त (Rene Descartes) के दार्शनिक सिद्धान्त ने वैज्ञानिक जगत् को प्रभावित किया । देकार्त ने संसार को 'मन' (Mind) तथा 'द्रव्य' (Matter) दो रूपों में विभाजित किया है । देकार्त के अनुसार 'Mind' चेतन तथा 'Matter' जड़ है –

''Seventeenth century in the philosophy of Rene Descartes who based his view of nature on the fundamental division into two separate and independent realms; that of mind, and that of matter.'' [165]

अंग्रेज वैज्ञानिक सर आइज़क न्यूटन (Sir Issac Newton) विज्ञान जगत् में गणितज्ञ, भौतिक वैज्ञानिक व दार्शनिक रूप में प्रतिष्ठित हुए । 1687 में प्रकाशित इनकी पुस्तक 'Philosophiae Naturalis Principia Mathematica' में गति के नियमों (Law of Motion) तथा गुरूत्वाकर्षण नियम (Law of Gravitation) दोनों की व्याख्या की गई है । न्यूटन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त कि यह संसार एक विस्तृत मशीन है, जिसमें ईश्वर द्वारा कुछ नियम डाल दिये गये हैं । नियमों के अन्तर्गत यह सृष्टि निरन्तर चल रही है । न्यूटन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त पाश्चात्य दार्शनिक रेने देकार्त के मत पर अवलम्बित है जिसमें मन एवं द्रव्य दो प्रमुख तत्त्वों पर विमर्श किया गया है । द्रव्य (Matter) अंश के जड़ होने के कारण यह भौतिक सुख के लिए इसके नितन्तर उपभोग की स्वीकृति प्रदान करता है–

''The 'Cartesian' division allowed scientists to treat matter as dead and completely separate from themselves, and to see the material world as a multitude of different objects assembled in to a huge machine. Such a mechanistic world view was held by Issac Newton who constructed his mechanics on its basis and made it the foundation of classical physics.'' [166]

आंग्ल रसायनज्ञ डाल्टन (Dalton) ने पदार्थ की प्रकृति के बारे में आधारभूत सिद्धान्त दिया– 'सभी पदार्थ चाहे तत्त्व यौगिक या मिश्रण हो सूक्ष्म कणों से बने होते हैं जिन्हें परमाणु कहते हैं । डाल्टन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की विवेचना निम्न प्रकार कर सकते हैं [167]–

i. तत्त्व अतिसूक्ष्म अविभाज्य कणों से मिलकर बनता है, जिन्हें परमाणु कहते हैं ।

---

[165] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p. 27

[166] वही

[167] विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, पृ. 21

ii. दिये गये तत्त्व के सभी परमाणु द्रव्यमान और गुणधर्म दोनों में समान होते हैं । विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं के विभिन्न द्रव्यमान और गुणधर्म होते हैं ।

iii. किसी तत्त्व के परमाणु का सृजन, विनाश या दूसरे तत्त्व के परमाणुओं में रूपान्तरण नहीं हो सकता है ।

iv. जब किसी विभिन्न तत्त्व के परमाणु आपस में छोटी पूर्ण संख्या अनुपात में संयोग करते हैं तो यौगिक बनते हैं ।

v. यौगिक में परमाणुओं की आपेक्षिक संख्या और प्रकार निश्चित रहते हैं ।

डाल्टन के अनुसार परमाणु किसी तत्त्व का सूक्ष्मतम कण है जो सभी रासायनिक और भौतिक परिवर्तनों में अपनी रासायनिक पहचान बनाए रखता है । एक तत्त्व के परमाणु दूसरे तत्त्व के परमाणुओं से भिन्न होते हैं । वर्तमान में परमाणु अविभाज्य नहीं है, वह प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन इत्यादि से मिलकर बना है ।

पारम्परिक यान्त्रिकी के निष्कर्ष दैनिक जीवन के सामान्य अनुभवों में सही हो सकते हैं परन्तु सूक्ष्मतम कण पर यह सही सिद्ध नहीं हो पाते हैं । क्वाण्टम यान्त्रिकी (Quantum Mechanics) की खोज के बाद यह निष्कर्ष पूर्णतया असफल हो जाते हैं । क्वाण्टम यांत्रिकी के अनुसार किसी एक क्षण पर किसी आवेशित गतिशील सूक्ष्मतम कण की स्थिति एवं संवेग दोनो एक साथ ज़ात करना असम्भव है । चिरसम्मत/ पारम्परिक यान्त्रिकी के अनुसार किसी कण की ऊर्जा इच्छानुसार बढ़ाई जा सकती है जबकि क्वाण्टम यांत्रिकी द्वारा ऐसा संभव नहीं है ।[168] पारम्परिक भौतिकी के प्रकृति जड़ सम्बन्धी विचार ने मनुष्य के दैनिक जीवन को भी बहुत प्रभावित किया । मनुष्य ने सम्पूर्ण वस्तुओं को अपनी उपभोग की वस्तु मानकर इनका दोहन करना शुरू किया । न्यूटन के यांत्रिकता सम्बन्धी विचार से पृथिवी पर अनेक समस्याएं प्रकट हुई । सृष्टि को एक विशाल मशीन मान लेने पर पृथिवी के प्रति संवेदनशीलता, पूज्या, आदरणीया जैसे भाव तिरोहित होने लगे एवं परिणामस्वरूप वर्तमान विश्व के समक्ष पारिस्थितिकीय असन्तुलन का भयावह रूप सभी देशों के मध्य चिन्ता का विषय बना हुआ है । पारम्परिक भौतिकी के सिद्धान्त को क्वांटम यांत्रिकी द्वारा नकार दिया गया है एवं नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत किये, जिनसे संसार के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित होने लगा है । 1897 में जे. जे. थॉमसन (J. J. Thomson) ने 'इलेक्ट्रॉन' की खोज की । इसके अनन्तर ही यह प्रयोग द्वारा सिद्ध हुआ कि प्रत्येक तत्त्व के परमाणु में ऋण आवेशित कण 'इलेक्ट्रॉन' होते हैं । जर्मन वैज्ञानिक मेक्स प्लांक (Max

---

[168] गोयल, वी, के.,भौतिक रसायन, पृ. 18

Planck) ने सन् 1900 में उर्जा वितरण के लिए एक सिद्धान्त दिया जिसके अनुसार विकिरण का उत्सर्जन निरन्तर न होकर ऊर्जा के पैकेट के रूप में होता है, जिन्हें फोटॉन कहते हैं । ऊर्जा के इस मान को क्वाण्टम कहते हैं ।[169]

आइन्सटीन द्वारा प्रतिपादित सामान्य और विशेष सापेक्षता के सिद्धान्त, जेम्स क्लार्क मैक्सवेल के तापगतिकी नियम, मैक्स प्लांक का क्वांटम सिद्धान्त, हाइजेनबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धान्त आदि द्वारा पारम्परिक सिद्धान्तों के स्थान पर अनेक नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये । जिनमें सृष्टि की संरचना तथा स्वरूप के विषय में मत प्रस्तुत किये गये । सृष्टि के स्वरूप के विषय में विचार परिवर्तित हुए यथा–तापगतिकी के प्रथम नियम के अनुसार ऊर्जा की न उत्पत्ति होती है एवं न ही विनाश । विश्व में कुल ऊर्जा का परिमाण सदा समान बना रहता है । ऊर्जा केवल एक रूप से अन्य रूप में रूपान्तरित होती है । यह ऊर्जा संरक्षण के प्रथम नियम के रूप में प्रसिद्ध है ।[170]

भौतिक वास्तविकता और आत्मनिष्ठ अनुभूति में परस्पर सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

भौतिक वास्तविकता	*आत्मनिष्ठ अनुभूति*
शास्त्रीय भौतिकी क्वाण्टम भौतिकी अव्यक्त अवस्था	इन्द्रिय अनुभूति का क्षेत्र नक्षत्रीय एवं सूक्ष्म अनुक्षेत्र दिव्य अनुभूति

विज्ञान ने प्रकारान्तर से कार्य–कारण सिद्धान्त को ऊर्जा संरक्षण के सिद्धान्त में निहित किया है । इस सिद्धान्त के अनुसार समस्त भौतिक रासायनिक परिवर्तनों में द्रव्य की मात्रा (ऊर्जा) अपरिवर्तित रहती है । इन परिवर्तनों में न ही कोई नया पदार्थ बनता है एवं न ही नष्ट होता है । रासायनिक परिवर्तन में पदार्थ की आन्तरिक संरचना परिवर्तित हो जाती है, इससे बाह्य रूप में अन्तर आता है, यही वस्तु विशेष की उत्पत्ति या नाश नाम से कहे जाते हैं । पदार्थ की सत्ता उत्पत्ति विनाश से परे है । इस प्रकार यह सिद्धान्त वैदिक कारण–कार्य सिद्धान्त के

[169] गोयल, वी, के.,भौतिक रसायन, पृ. 13
[170] वही, पृ. 24

समतुल्य सा प्रतीत होता है ।

पृथिवी की स्थिति एवं प्रमुख समस्याएं–

पृथिवी प्राकृतिक रूप से सूर्य की किरणों से ऊष्मा प्राप्त करती है । ये किरणें वायुमण्डल से होते हुए पृथिवी की सतह से टकराती हैं और वहीं से परावर्तित होकर पुनः लौट जाती हैं । भूमि के वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैस भी हैं जो इस पर एक प्रकार का प्राकृतिक आवरण बना लेती हैं । यह आवरण परावर्तित किरणों के एक हिस्से को रोक लेता है, जो इस भूमि के वातावरण को गर्म बनाए रखता है । ग्रीन हाउस गैसों की अधिकता होने पर यह आवरण और अधिक स्थूल हो जाता है और सूर्य की अधिक किरणों को रोकने लगता है । यहीं से ग्लोबल वार्मिंग का स्वरूप प्रारम्भ होता है । वातावरण की सतह में उपस्थित ग्रीन हाउस गैस सूर्य से आने वाले प्रकाश को पृथिवी पर आने देती हैं । फलस्वरूप पृथिवी गर्म होने लगती है और अवरक्त प्रकाश उत्सर्जित करती है । ग्रीन हाउस गैस के द्वारा इस प्रकाश को पृथिवी के वातावरण पर ही एकत्र करते रहने के कारण ऊष्मा पृथिवी के आस–पास संचित होती रहती है ।

ग्रीन हाउस गैसों (कार्बन–डाई–आक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, जलवाष्प) की वृद्धि मानवीय गतिविधियों जैसे– जीवाश्म ईंधन का प्रयोग, वनों की कटाई, कृषि कार्य आदि से भी होती है । ज्वालामुखी विस्फोट के फलस्वरूप भी ग्रीन हाउस गैसें निकलती हैं और सतह के निकट एकत्र हो जाती हैं । इस तापवृद्धि के प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणाम अत्यधिक व्यापक होंगे । बर्फ पिघलने से समुद्री जल स्तर बढ़ेगा और तटीय देशों के डूबने का खतरा बढ़ जाएगा । वातावरण में जल की मात्रा में परिवर्तन से मौसम के विपरीत चक्रवात, अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसे प्रभाव प्रदर्शित होंगे । परोक्ष परिणाम के अन्तर्गत पौधों और जीवों के स्वभाव में परिवर्तन, उनके अस्तित्त्व का संकट, रोगों की अधिकता इत्यादि होंगे ।

जलवायु परिवर्तन, जो ग्लोबल वार्मिंग का परिणाम है, से जल संसाधनों, ग्लेशियरों, नदी व्यवस्था एवं भूमिगत जल पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है । कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस जैसे जीवाश्म ईंधन वायुमण्डल में सल्फर डाइआक्साइड और नाइट्रोजन जैसे रसायन मुक्त करते हैं । वायु में स्थित जलवाष्प अन्य दूसरे रसायनों से मिलकर सल्फ्युरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल, सल्फेट, नाइट्रेट जैसे दूसरे हानिकारक प्रदूषक उत्पन्न करते हैं । ये प्रदूषक वायुमण्डल में अम्लीय वर्षा का कारण बनते हैं । अम्लीय वर्षा

अपनी अवक्षारक प्रकृति के कारण पर्यावरण को अनेक प्रकार से हानि पहुंचाती है । अम्लीय प्रदूषक सूखे कणों और गैसों के रूप में भी होते हैं और वर्षा जल द्वारा यह अवक्षारक घोल बनाते हैं, जिसे अम्लीय अवसाद कहते हैं । यूरोप (विशेष रूप से उत्तरी एवं पश्चिमी भागों में), उत्तरी अमेरिका, जापान और चीन में अम्लीय वर्षा से हानि होती है । तेलशोधन, धातुविगलन, तापविद्युत उत्पादन, मोटरवाहन आदि अम्लीय वर्षा के प्रमुख कारक हैं । पृथिवी के स्वरूप को ही मनुष्य द्वारा परिवर्तित किया जा रहा है–

"One of the few certainties about the earth is that we have changed the atmosphere and the land surface more then it has changed by itself in millions of years. Thease changes still go on and ever faster as our numbers grow . ominously nothing yet seems to have happened more noticeable than the ozone hole over antarctica.'' [171]

संस्कृति के दो रूप हमें देखने को मिलते हैं–

1) प्रथम मानव निर्मित संस्कृति जो उसी के द्वारा पल्लवित, पोषित तथा विकसित है । कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, चिन्तन यह सब किसी समाज की सांस्कृतिक विरासत के अन्तर्गत आते हैं ।
2) नैसर्गिक संस्कृति जो परम तत्त्व द्वारा अभिव्यक्त है । इसके अन्तर्गत नदी, समुद्र, विशाल, अरण्य, जीव–जन्तु खनिज आदि सम्मिलित हैं ।

पृथिवी सूक्त में जहां मानव निर्मित संस्कृति का उल्लेख है वहीं प्राकृतिक वैभव की भी भव्य झांकी प्रस्तुत की गयी है । वर्तमान समय में भी *'Holistic'* (सार्वभौम, वैश्विक) शब्द सभी सम्प्रदायों द्वारा मान्य है । यह शब्द केवल आध्यात्मिक सत्य को ही प्रदर्शित नहीं करता अपितु सार्वभौम सत्ता, ब्रह्माण्ड आदि का भी प्रतिनिधित्व करता है । यह सभी सम्प्रदायों के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक अनुभव को प्रदर्शित करता हुआ यह सिद्ध करता है कि प्रत्येक सत्ता सम्पूर्ण के भाव का प्रतिनिधित्व करती है ।

पृथिवी सूक्त में भूगर्भशास्त्र सम्बन्धी दृष्टान्त–

भूविज्ञान या भूगर्भशास्त्र जिसे अंग्रेजी में ज्योलॉजी (Geology) कहते हैं, में भूविज्ञान के दो स्तम्भ हैं–

(1) भौतिक भूविज्ञान

[171] LOVELOCK, JAMES, GAIA A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH, Preface, p. 18

(2) ऐतिहासिक भूविज्ञान

भौतिक भूविज्ञान के अन्तर्गत पृथिवी की संरचना, पृथिवी को निर्मित करने वाले, सज्जित करने वाले आन्तरिक तथा बाह्य प्रक्रम एवं उनके प्रभाव आदि विषय आते हैं । ऐतिहासिक भूविज्ञान के अन्तर्गत पृथिवी का इतिहास समाहित है । संक्षेप में भूगर्भशास्त्र में भूमि की सृष्टि, भूमि का रूप, इसके गर्भ में निहित समस्त पदार्थ, पर्वत, शैल, खान, समुद्र–सतह पर उपलब्ध सर्वस्व समाहित है ।

पृथिवी के गर्भ में अग्नि–

अथर्ववेद में कहा गया है – *'वैश्वानरं बिभ्रती भूमिः'*[172] तथा *'अग्निवासा पृथिवीः'*[173] अर्थात् जिस प्रकार माता पुत्र को गर्भ में धारण करती है उसी प्रकार पृथिवी भी अपने अन्तर में गर्भ को धारण करती है । जैसे–जैसे अधिक खनन किया जाता है, तापमान बढता जाता है । दक्षिण अफ्रीका की सोने की रॉबिन्सन खान में, जो विश्व की सबसे गहरी खान है, की दीवारों का तापमान मनुष्य के लिए असह्य है । अथर्ववेद में ही अन्यत्र वर्णन है कि पृथिवी के अन्दर अग्नि है, वह वनस्पतियों में, जल में, पत्थरों में, मनुष्यों के शरीर में तथा अन्य पशुओं आदि में भी व्याप्त है । इससे यह ज्ञात होता है कि अग्नि पृथिवी के अन्दर ही नहीं सर्वत्र व्याप्त है–

''अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।'' [174]

पृथिवी के विभिन्न रूप–

वैदिक ऋषि सर्वदा ध्रुव पृथिवी की कामना करता है । प्राकृतिक विपदाओं (भूकम्प, बाढ, प्रवात आदि) से रहित पृथिवी ही निवास के योग्य मानी गयी है–

''ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्' ।'' [175]

इस पृथिवी पर गिरि तथा हिमवान् पर्वत हैं– *''गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तः ।''* [176] शिला अश्मा तथा पांशु हैं– *''शिला भूमिरश्मा पांसुः ।''* [177] तीन प्रकार की बभ्रु, कृष्णा, रक्तवर्णा

[172] अथर्व. 12/1/6
[173] वही 12/1/21
[174] वही 12/1/19
[175] अथर्व. 12/1/11
[176] वही 12/1/11
[177] वही 12/1/26

मिट्टी उपलब्ध है– *''बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपाम् ।''* [178] ये सभी विषय भू–विज्ञान के अन्तर्गत समाविष्ट हैं । गिरि, पर्वत, तथा शैल पृथिवी की ऊपरी सतह का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करती हैं । तीन रंग की मिट्टी पृथिवी के अन्दर प्राप्त रसायनों की तरफ इंगित करती हैं ।

पृथिवी में धातु और खनिज–

भूमि सूक्त के मन्त्रों से स्पष्ट है कि पृथिवी खनिजों का आगार है– *''विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी'।''* [179] खनिज से तात्पर्य है– खोदकर निकाला गया । अथर्ववेद में वर्णन है कि पृथिवी के अन्दर धन का खजाना है, इसमें मणि और सुवर्ण इत्यादि हैं– *''निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।''* [180] अन्य मन्त्र में वर्णन है कि इसके गर्भ में हिरण्य है– *''तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ।''* [181] पृथिवी को विश्वगर्भा कहा है इसका अभिप्राय है कि पृथिवी के गर्भ में सभी धातुएं और रत्न आदि खनिज पदार्थ हैं– *''पृथिवीं विश्वगर्भाम् ।''* [182]

भूमि में अग्नि के कारण गति और कम्पन–

पृथिवी के अन्तःस्थल में अग्नि समाहित है अतः इसमें गति व कम्पन है । मन्त्र में 'विजमाना' शब्द है, जिसका अर्थ है– हिलना, कांपते हुए चलना ।

''याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।'' [183]

गाया परिकल्पना (Gaia hypothesis)-

वर्तमान युग में सार्वभौम तन्त्र में पृथिवी सबसे महत्त्वपूर्ण है । हमारी सम्पूर्ण मूलभूत आवश्यकताएं पृथिवी पर ही आधारित हैं । इस सम्पूर्ण तन्त्र में मनुष्य की सत्ता एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं एवं यह तन्त्र जीवित तथा स्वतः संचालित है । इसी तथ्य को जेम्स लवलॉक (James Lovelock) ने गाया परिकल्पना (Gaia hypothesis) द्वारा वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया है, जिसका मानना है कि पृथिवी स्वतः संचालित तन्त्र है । लिन मारगुलिस (Lynn Margulis) ने इसे 'Super Organismic System' कहा है जिसका अर्थ है– 'A

---

[178] अथर्व. 12/1/11
[179] वही 12/1/6
[180] वही 12/1/44
[181] वही 12/1/26
[182] वही 12/1/43
[183] वही 12/1/37

living entity, and humanity is a vital part of its life system' अर्थात् जीवित सत्ता तथा जीव इस जीवन तन्त्र का हिस्सा है । राजेश्वरी प्रकाश ने अपने लेख में R. Hofstadter के मत को उद्धृत करते हुए कहा है–

''The most natural thing in the world to grasp is simply the belief that the whole is greater then the sum of its parts.'' [184]

सृष्टि के मूल रूप में एक सत्ता विद्यमान है इसे वैदिक ऋषि ने 'ब्रह्म' नाम दिया–

''न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यान्न परः किं चनास ।।'' [185]

प्रलयकाल में न ही मृत्यु तत्त्व था न ही अमृत–तत्त्व था । रात–दिन का भी कोई भेदात्मक चिह्न नहीं था । एकमात्र वह ब्रह्म तत्त्व वायु के अभाव में भी अपनी इच्छा शक्ति से श्वास–प्रश्वास ले रहा था अतः उस ब्रह्म तत्त्व से अलग या भिन्न कुछ नहीं था ।

पृथिवी को समग्रता से जानने पर यह दृष्टि विकसित होती है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् परस्पर सम्बन्धित है तथा सभी में एक ही चैतन्य का निवास है । श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक भी यही व्यक्त करता है कि सम्पूर्ण सृष्टि एक ही तत्त्व का अभिव्यक्त रूप है ।

''मतः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।'' [186]

पृथिवी को जीवित मानने की परम्परा अत्यधिक प्राचीन है । परन्तु 17–18वीं शताब्दी में पारम्परिक भौतिकी एवं तत्सम्बद्ध अन्य वैज्ञानिक शाखाओं की पूर्वमान्यताओं व परीक्षणों के आधार पर संसार को यन्त्रवत् माना गया । परन्तु आधुनिक विज्ञान ने पुनः सभी को परस्पर सम्बन्धित माना । जैसे भू–वैज्ञानिक जेम्सहटन ने भूगर्भिक एवं जैविक प्रकिया को परस्पर सम्बन्धित माना है ।

''The Scottis geologist James Hutton maintained that geological and biological process are all interlinked and compared the Earth's waters to the circulatory system of an animal.'' [187]

---

[184] http://www.lifepositive.com/mind/philosophy/gaia/gaia_article.asp

[185] ऋ. 10/129/2

[186] श्रीमद्भ. 7/7

जिस प्रकार हमारे शरीर में अनेक शिराएं है उसी प्रकार पृथिवी के अन्दर जल प्रवाह के लिए प्रणालिकाएं बनी हुई है । इन शिराओं के ज्ञान से यह ज्ञात होता है कि पृथिवी में कहां जल है । पृथिवी के अन्दर जल का पता लगाने के लिए इन शिराओं का ज्ञान आवश्यक है । ये शिराएं ऐन्द्री, आग्नेयी आदि आठ हैं । इन आठ शिराओं के मध्य महाशिरा नामक नवमी शिरा है । इन शिराओं से सैंकड़ों शिराएं निकली हैं । बृहत्संहिता में वराहमिहिर ने स्पष्ट किया है–

''दकार्गलं येन जलोपलब्धिः ।

पुसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ।

दिक्पतिसंज्ञा च शिरा, नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी ।

एताभ्योऽन्याः शतशो विनिःसृता नामभिः प्रथिताः ॥'' [188]

1965 में जब जेम्स लवलॉक केर्लिफोर्निया स्थित जे.पी.एल. (Jet propulsion Laboratory) में कार्यरत थे तब 'पृथिवी एक जीवित तन्त्र है' यह विचार उनके मस्तिष्क में समुद्भूत हुआ । नासा की योजना थी कि एक अन्तरिक्ष यान को मंगलग्रह पर भेजा जाए जो यह प्रयोग करे कि मंगलग्रह की मिट्टी पर जीवन कैसे सम्भव है । यन्त्र के प्रारूप सम्बन्धी समस्या पर जेम्स लवलॉक ने कार्य किया तब स्वयं से यह प्रश्न किया कि हम मंगल ग्रह के जीवन के सम्बन्ध में कैसे कह सकते हैं ? यह पृथिवी के जीवन की प्रकृति के आधार पर ही सुनिश्चित होगा । कुछ समय पश्चात् इस प्रश्न ने उनको गहनता से सोचने के लिये के लिये प्रेरित किया कि जीवन की प्रकृति Nature of life क्या है एवं इसको कैसे पहचाना जाए कि सम्पूर्ण जीवन तन्त्र शक्ति से युक्त है । गाया को उन्होंने एक वृहद् जीवित सत्ता के रूप में स्वीकार किया –

''Gaia is an attempt to find the largest living creature on Earth..... but if Gaia dose exis, than we may mind ourselves and all other living things to be parts and partners of a vast being who in her entirety has the power to maintain our planet as a fit comfortable habitat for life.'' [189]

पृथिवी ने ही स्वयं को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है, यदि हम जीवित है तो पृथिवी भी निश्चित ही जीवित सत्ता है तथा हमारा जीवन गाया के कारण एवं गाया के

---

[187] Capra, Fritjof, The Web of life, p. 22

[188] बृ. सं. दकार्गलाध्याय 1,4

[189] LOVELOCK, JAMES, GAIA A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH, p. 1

अनुरूप ही है । गाया परिकल्पना (Gaia Hypothesis) को 'Gaia Theory' (गाया सिद्धान्त), 'Gaia Principle' नाम से भी जाना जाता है, जो यह प्रतिपादित करती है कि पृथिवी के चारों और सभी तन्त्र परस्पर सम्बन्धित हैं । पृथिवी पर जीवन की सुरक्षा भी इसी जीवित तन्त्र द्वारा नियन्त्रित हैं । वैज्ञानिक रूप से यह परिकल्पना वातावरण, वैश्विक तापमान, सामुद्रिक गतिविधि, वातावरण में आक्सीजन इत्यादि की तरफ भी ध्यान केन्द्रित करती है । यह परिकल्पना 1970 में जेम्स लवलॉक तथा उनकी सहयोगी लीन मारगुलिस (Lynn Margulis) द्वारा दी गयी जो 1979 में 'GAIA: A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH' नामक पुस्तक के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई । वर्तमान समय में इसे 'Geophysiology', 'Earth System Science' रूप में भी जाना जाता है । इसके कुछ सिद्धान्त 'Biogeochemistry' तथा 'System Ecology' द्वारा भी ग्रहण किये गये हैं । यह पारिस्थितिकीय परिकल्पना अन्य दर्शन तथा सामाजिक गतिविधियों से भी प्रभावित है ।

गाया एक विकासशील तन्त्र है जो सभी जीवित वस्तुओं और उनके सतही पर्यावरण से बना है । इसमें चट्टान, महासागर एवं अन्य प्राकृतिक स्रोत परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं–

''Gaia is an evolving system, made up from all living things and their surface environment, the oceans, the atmosphere and crustal rocks, the two parts tightly coupled and indivisible.'' [190]

लवलॉक का मानना है कि पृथिवी का असन्तुलन एवं इसको सुरक्षित रखने का उपाय एक महत्त्वपूर्ण विषय है, क्योंकि प्रत्येक जीव–जन्तु की स्थिति स्वस्थ पृथिवी पर ही आश्रित है । इसके प्रति ध्यान रखना सर्वप्रथम कर्तव्य है क्योंकि हमें एक स्वस्थ ग्रह की आवश्यकता है । यद्यपि इनसे पूर्व पृथिवी को जीवित मानने वाले विचार दिये जा चुके हैं परन्तु इसके वास्तविक स्वरूप को जानने में सक्षम यह विचार अत्यन्त प्रभावी है । गाया परिकल्पना पृथिवी ग्रह को मंगल एवं शुक्र ग्रह से भिन्न जीवित रूप में देखता है । यह पृथिवी अपना निर्माण एवं ताप को अपने सुविधानुसार नियन्त्रित रखती है । यदि पृथिवी में परिवर्तन प्राकृतिक प्रक्रिया अनुसार होता है तो उससे वातावरण पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है । पर्यावरण में 21% आक्सीजन की स्थिति यह पृथिवी आग लगने पर भी नियन्त्रित रखती है । 21% आक्सीजन की मात्रा बढ़कर 25% हो जाने पर यह घातक सिद्ध होती है । ऐसा होने पर पौधे वृद्धि नहीं कर सकते हैं । अग्नि उन्हें अर्धविकसित अवस्था में ही नष्ट कर देगी । अत: स्पष्ट करते हुए लवलॉक कहते हैं–

[190] LOVELOCK, JAMES, THE AGES OF GAIA, p. 4

''It tells how the apparent random destructiveness of a forest fire might be part of a way to keep oxygen in the air at the safe level of 21 per cent. It describes how my friend Andrew Watson showed by simple experiments that even 25 per cent of oxygen in the air would be disastrous, Trees could not grow to make forests. With that much oxygen, fire would destroy them while still half grown. No one had though of the air, or the oxygen, that way before.'' [191]

इस परिकल्पना के फलस्वरूप पृथिवी को जीवित सत्ता के रूप में देखने की प्रवृति को बढ़ावा मिलता है । पृथिवी पर अम्लीय वर्षा होने पर हमारे उत्तकों (शारीरिक संरचना) के समान ही पृथिवी पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है । इसलिए प्रदूषण मनुष्य के समान ही इसके लिये भी हानिकारक है । पृथिवी प्रारम्भिक अवस्था में परिवर्तन एवं ताप को नियन्त्रित करने में अधिक समर्थ थी परन्तु वर्तमान समय में मनुष्य द्वारा किये जा रहे दुर्व्यवहार से सामञ्जस्य पूर्ण विकास कठिन है । लवलॉक स्वयं को ब्रह्माण्डीय शारीरिक चिकित्सक मानते हैं एवं जैविक 'पृथिवी' को रोगी । इनका मानना है कि सभी की उन्नति हेतु स्वस्थ ग्रह का होना सर्वप्रथम आवश्यक है अतः हमारा कर्तव्य है कि हम इसकी रक्षा करें । इस प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए कहा है –

''I speak as a planetary physician whose patient, the living Earth, complains of fever; I see the Earth's declining health as our most important concern, our very lives depending upon a healthy Earth. Our concern for it must come first. Because the welfare of the burgeoning masses of humanity demands a healthy planet.'' [192]

पृथिवी पर मनुष्य के दृष्टिकोण विभेद के कारण समस्याएं उत्पन्न होती हैं–

''We are programmed by our inheritance to see other living things as mainly something to eat, and we care more about our national tribe than anything else.'' [193]

हमें आनुवांशिक रूप से इस प्रकार की प्रकृति मिली है कि हम अन्य सभी जीवित वस्तुओं को अपने खाद्य पदार्थ के रूप में देखते है । हमारा यह विचार संकुचित है इसलिए हमारी दृष्टि भी स्वार्थ परक है । परन्तु वर्तमान समय में हम पाते हैं कि हम सभी इस जीवित तन्त्र के ही अंग है अतः उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण परिवर्तन अत्यावश्यक है ।

---

[191] LOVELOCK, JAMES, GAIA A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH, Perface, p. 14

[192] LOVELOCK, JAMES, THE REVENGE OF GAIA, P. 2

[193] LOVELOCK, JAMES, THE REVENGE OF GAIA, p. 4-5

''We still find alien the concept that we and the rest of life, from bacteria to whales, are parts of the much larger and diverse entity, the living Earth.'' [194]

गाया एक नवीन विचार है जो पृथिवी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिससे यह मार्ग प्रदर्शित होता है कि पृथिवी के प्रति किस प्रकार का व्यवहार किया जाए। इस प्रकार चिन्तन करने पर दो महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत होते हैं–

1) यह पृथिवी स्वनियन्त्रित जीवित सत्ता है।
2) हम सभी इस विशाल जीवित अवयव के ही हिस्से हैं। अतः इसके प्रति सम्यक् कर्तव्य निर्वहन करना चाहिए।

गाया सिद्धान्त पृथ्वी को सम्पूर्ण ग्रह रूप में प्रस्तुत करता है। हम ऐसा कोई कार्य न करें जिससे इसकी प्राकृतिक प्रक्रिया में कोई बाधा उत्पन्न हो। रासायनिक रूप से असन्तुलित पर्यावरण को पृथिवी किस तरह निरन्तर स्थिर अवस्था में रखती है, और जीवन की उपस्थिति के लिए एक नियन्त्रित वातावरण प्रदान करती है यह तथ्य विचारणीय है। पृथिवी के आरम्भ काल से इस पर तापमान दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। ये विचार यह सोचने के लिए विवश करते हैं कि कैसे जीवित तन्त्र की क्रियाएं इस पर्यावरण को अपने अनुसार नियन्त्रित किये हुए हैं।

1960 के प्रारम्भ में वैश्विक ताप और रासायनिक नियन्त्रण दोनों ही भूगर्भ–विज्ञानियों एवं जैव विज्ञानियों के मध्य अप्रसिद्ध विषय था। ये पृथिवी को जीवित मानने सम्बन्धी विचार की व्याख्या को अनावश्यक मानते थे। इनमें से कुछ वैज्ञानिकों, जो पर्यावरण परिवर्तन से जुड़े थे, ने इस विचार का स्वागत किया। जीव–विज्ञानियों ने यह कहते हुए कि, किसी भी प्रकार का स्वनियन्त्रित जैव–तन्त्र विकसित नहीं हुआ है, इस मत को अस्वीकृत किया। इनके अनुसार जैव तन्त्र पर्यावरण का हिस्सा न होकर समूह का हिस्सा है। इसके विपरीत गाया एक सम्पूर्ण तन्त्र के रूप में है जो जैविक एवं भौतिक पर्यावरण दोनों को परस्पर अन्तर्सम्बन्धित स्वीकार करते हुए पृथिवी को बहुत बड़ा तन्त्र मानता है, जिसने स्वनियन्त्रित विकास किया है–

''The Gaia theory posits that the Earth is a self-regulating complex system involving the biosphere, the atmosphere, the hydrospheres and the pedosphere, tightly coupled as an evolving system. The theory sustains that this

---

[194] LOVELOCK, JAMES, THE REVENGE OF GAIA, P. 5

system as whole called Gaia, seeks a physical and chemical environment optimal for comtemporary life.” [195]

इस प्रकार गाया सिद्धान्त द्वारा पृथिवी का जैविक रूप जो पहले अनौद्योगिक संस्कृति द्वारा अनुभव किया गया था (वह जीवन एवं संस्कृति से परस्पर सम्बन्धित था), को स्थापित करने का प्रयास किया गया है । गाया का विकास व्यक्ति के क्रियाकलाप पर निर्भर करता है । पृथिवी वर्तमान में वैश्विक तापवृद्धि, ग्रीनहाउस गैस की अधिकता, महासागरों की बदलती हुई संरचना, ध्रुवीय वनों का नष्ट होना, बर्फ का पिघलना जैसी गम्भीर समस्याओं से ग्रसित है । ऐसे समय में हमें गाया एवं पृथिवी माता जैसे विचार की आवश्यकता है जो प्रकृति के प्रति प्रेम एवं सौहार्द्र से पूर्ण हो । पृथिवी के प्राकृतिक तन्त्र को संचालित करने में मानवता क्या सहायता कर सकती है इस विषय पर चर्चा करने हेतु वर्तमान में भी वैज्ञानिक जेम्स लवलॉक एक पुस्तक लिख रहे हैं ।

भारतीय परम्परा में पृथिवी को वैदिक समय से ही माता माना गया है एवं स्वयं को उसकी सन्तति तथा त्यागपूर्वक उपभोग के विचार को दृढ़ किया है । पृथिवी को जीवित सत्ता के रूप में मन्त्र में आह्वान किया है–

‘‘द्यौश्च नः पृथिवी प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।

मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥’’ [196]

विशाल हृदय वाले द्यावा–पृथिवी हमें सभी पापों से सरंक्षित करें । यहां द्यावा–पृथिवी को चेतन माना है । इस प्रकार *आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक संकल्पना सम्बन्धी विचार रूप से वेदों में भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं जिनको मानवीय जीवन एवं वैज्ञानिक संकल्पना हेतु अपनाने पर एक स्वस्थ एवं आदर्श पर्यावरण का निर्माण किया जाना संभव है ।*

गाया परिकल्पना (Gaia hypothesis) की आवश्यकता–

गाया परिकल्पना यह स्पष्ट करती है कि हमें पृथिवी की सम्यक् पूर्ति, पोषण एवं संरक्षण करना चाहिए । गाया एक प्रेरणास्पद विचार है । इस विचार में गाया एक चेतना का एन्जाइम है जो हमारे ज़ान को विकसित करता है । इस विचार को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से जाना जा सकता है–

[195] LOVELOCK, JAMES, THE VANISHING FACE OF GAIA, p. 255

[196] ऋ. 10/36/2

1) सबसे महत्वपूर्ण यह है कि गाया से सम्बन्धित दृष्टिकोण ने हमारे विचार को पर्यावरणीय और पारिस्थितिकीय आवश्यकताओं और उत्तरदायित्वों के प्रति चेतनाशील बना दिया है । यह हमें इस सिद्धान्त को बढ़ावा देने तथा व्यावहारिक जीवन में पर्यावरण को सुरक्षित रखने, पारिस्थितिकीय असन्तुलन को समझने व उसका सामना करने के लिए प्रेरित करती है ।

''Havel's words ; According to the Gaia Hypothesis. We are parts of a greater whole. Our destiny is not depend merely on what we do for ourselves but also on what we do for Gaia as a whole. If we endanger her, She will dispense with us in the interests of a higher value-life it self.'' [197]

अतः हमारा लक्ष्य कभी भी यह नहीं होना चाहिए कि हम प्रकृति के प्रति इच्छानुसार गलत व्यवहार करें । गाया परिकल्पना के अनुसार गाया एक तन्त्र है जिसके अन्तर्गत हम सभी संचालित हैं । इसलिए हमें प्रकृति के अनुरूप ही कार्य करना चाहिए जिससे इस तन्त्र में कोई समस्या उत्पन्न न हो । वैयक्तिक अधिकार को प्रधानता देने के कारण ही असन्तुलन सम्बन्धी परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं । वैदिक चिन्तन में वैश्विकता को प्रधानता दी जाती है अतः प्रत्येक दिन सन्ध्या वंदन में पूरे कल्प का ध्यान करते हैं–

''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥'' [198]

2) यह परिकल्पना हमारा ध्यान पारम्परिक विज्ञान से पर्यावरणीय जैविक विज्ञान की तरफ आकृष्ट करती है । इसने पृथिवी के जीवितता सम्बन्धित विचार को सर्वसमक्ष उपस्थित कर दिया है । यह विचारधारा हमें सुधार की ओर प्रेरित करती है जो वास्तविक रूप से जीव केन्द्रित है एवं जैविक तन्त्र को मानने वाली है । इस पृथिवी पर व्हेल (सबसे बड़े जीव) से वायरस (छोटे जीव) तक, बड़े पेड़ से छोटे पौधे तक विद्यमान हैं । सभी इसी की ही अभिव्यक्ति हैं । यह पृथिवी सार्वभौम रूप में है । उक्त विचार व्यक्त करते हुए जेम्स लवलॉक कहते हैं–

''Working in a new intellectual environment, I was able to forget Mars and to concentrate on the Earth and the nature of its atmosphere the result of this more single minded approach was the development of the hypothsis

[197] LOVELOCK, JAMES, GAIA A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH, Perface, p. 10

[198] ऋ. 10/190/3

that the entire range of living matter on earth, From whales to viruses, and from oaks to algae, could be regarded as constituting a single living entity, capable of manipulating the Earth's atmosphere to suit its overall needs and endowed with faculties and power far beyond these of its constituent parts.'' [199]

यह एक जीवित सता ही मनुष्य की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कारण है । सभी प्राणि इसी पर अवस्थित हैं एवं सम्पूर्ण आवश्यकता की वस्तुएं इसी से ग्रहण करते हैं । यही भाव व्यक्त करते हुए उपनिषद् में कहा गया है–

''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रत्यन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ।'' [200]

गाया सिद्धान्त परम्परागत भौतिकी के विचारों से भिन्न है, जो पृथिवी को मृत ग्रह मानते हुए यह स्वीकार करती है कि यह एक स्वनियन्त्रित सत्ता है जो जड़ चट्टान, समुद्र इत्यादि से निर्मित है, जिस पर अनेक प्रकार के जीव–जन्तु रहते हैं । गाया सिद्धान्त पृथिवी को परस्पर सम्बन्धित, जीवित तथा स्वानियन्त्रित सत्ता मानता है–

''Consider Gaia theory as an alternative to the conventional wisdom that sees the Earth as a deed planet made of inanimate rokes, ocean, and it as a red system, comprising all of life and all of its envirment tightly coupled so as to from a self-regulating entity.'' [201]

3) पृथिवी, इसमें रहने वाले सभी अंशों के कुल योग के बराबर नहीं है अपितु उससे अधिक है । जिस प्रकार से जैविक तन्त्र (Organism) और पर्यावरणीय जैविक द्वारा बताया गया है कि यह कुछ भागों के संयोग से अधिक है (Whole is greater then the sum of its parts), जिसको केवल पारम्परिक वैज्ञानिक पद्धति द्वारा नहीं समझा जा सकता है । गाया परिकल्पना का यह विचार हमें पृथिवी को एक सार्वभौम और व्यवस्थित रूप से जानने तथा परस्पर सम्बन्धित रूप से देखने को बढ़ावा देता है । यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि सम्पूर्ण संसार को परस्पर अन्तर्सम्बन्धित रूप से जानना चाहिए । गाया परिकल्पना से जीवन में अनुकूल परिस्थिति एवं सन्तुलित पर्यावरण का निर्माण किया जा सकता है ।

[199] LOVELOCK, JAMES, GAIA A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH, p. 9
[200] तै. उप. 3/1/1
[201] LOVELOCK, JAMES, HEALING GAIA, p. 12

''The Originality of the Gaia theory relies on the assessment that such homeostatic balance is actively pursued with the goal of keeping the optimal conditions for life, even when terrestrial or external events menace them.'' 202

4) यह परिकल्पना हमें पृथिवी को आध्यात्मिक रूप से सोचने के लिए प्रेरणा देती है और Ecotheology (पारिस्थितिकीय अध्यात्म विद्या) को समझने में मदद करती है । परिस्थितिकीय और गम्भीर आध्यात्मिक अन्तर्सम्बन्ध को परिलक्षित करने वाली यह परिकल्पना महत्त्वपूर्ण है ।

''The Gaia hypothesis is for these who like to walk or simply stand and stare, to wonder about the Earth and life it bears, and to speculate about the consequences of our own presence here. It is an alternative to that pessimistic view which sees nature as a primitive force.'' [203]

पृथिवी माता का विचार बहुत प्राचीन है । ग्रीक परम्परा में इसे मातृदेवी (गाया) नाम दिया गया है । अत: यह धार्मिक सम्बन्ध को भी इंगित करता है– *''The idea of Mother Earth or, as the Greeks called her, Gaia , has been widely held throughout history and has been the basis of a belief that coexists with the great religions .''* [204]

5) यह परिकल्पना मनुष्य को स्वयं नये रूप में देखने के लिए एक दर्पण प्रदान करती है । यह प्रकृति की अनुभूति करने तथा मानवता के अर्थ और भाग्य को समझने में मदद करती है । जेम्स लवलॉक ने यह सुझाव दिया है कि मानवता पृथिवी के आंतरिक तन्त्र को इस तरह विकसित कर रही है कि गाया उससे प्रभावित होती है । जब हमारा समाज धन को ही अधिक महत्व देने लगता है तथा उसके लिए ये सम्बन्ध गौण हो जाते हैं, तब यह विचार नयी दिशा एवं स्फूर्ति प्रदान करने वाला है । इस प्रकार यह परिकल्पना नया विचार, नया आयाम उपस्थित करती है जो मनुष्य की कुछ इच्छाओं से अधिक है ।

जेम्स लवलॉक ने यह स्पष्ट किया है कि हमारा भविष्य गाया (Gaia) के साथ सही सम्बन्ध पर ही निर्भर करता है–

---

[202] LOVELOCK, JAMES, THE VANISHING FACE OF GAIA, p. 179
[203] LOVELOCK, JAMES, GAIA A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH, p. 11
[204] वही, Perface, p. 15

''In Gaia we are just another species, neither the owners nor the stewards of this planet. Our future depends much more upon a right relationship with Gaia than with the never-ending drama of human interest.'' [205]

यहां तीन विचार प्रमुख हैं–

1) हम प्रकृति के विजेता नहीं हैं ।
2) हमारे कृत्य का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पडता है एवं हमें किस प्रकार का कार्य करना चाहिए जिससे प्राकृतिक स्रोत पर विपरीत असर नहीं हो ।
3) हमारा गाया (पृथिवी) के साथ कैसा सम्बन्ध है तथा किस प्रकार सम्यक् सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है ।

इस प्रकार यह परिकल्पना सामञ्जस्यपूर्ण विकास हेतु उपयोगी है । यह व्यक्तियों को पृथिवी के प्रति व्यवहार का नया दृष्टिकोण प्रदान करती है । यदि हम गाया (पृथिवी) की सुरक्षा करने में असफल हैं तो पृथिवी भी हमारी रक्षा अधिक समय तक नहीं कर सकती ।

''Sustainable development, supported by the use of renewable energy, is the approach to living with the Earth...... if we fail to take care of the Earth, it surely will take care of itself by making us no longer welcome.'' [206]

---

[205] LOVELOCK, JAMES, THE AGES OF GAIA, p. 11
[206] LOVELOCK, JAMES, THE REVENGE OF GAIA, p. 3

चतुर्थ अध्याय

पृथिवी की अचेतनता एवं चेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण और पर्यावरण पर उसका प्रभाव

पृथिवी की अचेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण –

पारम्परिक भौतिकी *(Classical Physics)* में पृथिवी को जड़ स्वीकार किया है । पारम्परिक भौतिक–वैज्ञानिकों का मानना था कि प्रत्येक परमाणु अपने आप में स्वतन्त्र, अविभाज्य तथा पदार्थ की सबसे छोटी इकाई है । पदार्थ के एक परमाणु का दूसरे परमाणु के साथ परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है । प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणु से नैसर्गिक रूप से भिन्न, असम्बद्ध है । संसार यन्त्रवत् है, जो कुछ नियमों के अनुसार चल रहा है । यह विज्ञान विश्व को चेतन तथा जड़ के रूप में विभक्त करता है । दोनों को एक दूसरे से पृथक् मानते हुए जड़ तत्त्व को चेतन के अधीन मानता है । मनुष्य जो कि चेतन है, को प्रकृति के निर्मम दोहन की स्वीकृति प्रदान की । इस सिद्धान्त का उद्भव औद्योगिक क्रान्ति के समानान्तर सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी में हुआ । इस विचार ने औद्योगिक उपयोग को बढ़ावा दिया है । यह दृष्टिकोण मनुष्य की भौतिक विलासिता की वृद्धि के लिए व प्रकृति के निर्मम दोहन के लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है । यह मनुष्य की उपभोगवादी प्रवृत्ति का खुला समर्थन करता है, अतः पृथिवी पर इसके प्रभाव भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हैं ।

अचेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण का पर्यावरण पर प्रभाव–

- ग्लेशियर पिघल रहे हैं, समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है । जो स्थान समुद्र की सतह पर ही है जैसे– मालदीव, उनके लिए खतरा पैदा हो गया है । इनकी भूमि कुछ वर्षों पश्चात् जलमग्न हो सकती है । बांग्लादेश भी समुद्र की सतह के बहुत करीब है ।
- पूंजीवादी विकास की अंधी होड़ और दौड़ में प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट किया जा रहा है । सरकार द्वारा नदी, वन, इत्यादि प्राकृतिक स्रोतों को देशी–विदेशी कम्पनियों को बेचा जा रहा है जिससे पृथिवी की वातावरण सम्बन्धित समस्या अधिक दृढ़

होती जा रही है । विकास का यह माध्यम ही प्रकृति और पर्यावरण के विनाश का मार्ग प्रशस्त कर रहा है ।

- इस प्रकार के दृष्टिकोण के कारण पर्यावरण को उच्च या मध्यम वर्ग के लोगों ने अपने वशीभूत कर लिया है । उन्हें लगता है कि भारत एक सुपर पावर है, हम धनी हैं, हमें धनी देश के लोगों की तरह रहना चाहिए अतः वे अपने लिए कॉरपोरेट जीवन शैली अपनाना चाहते हैं । जिसका परिणाम है कि दिल्ली को 'वर्ल्ड क्लास सिटी' बनाना चाहते हैं । अपनी इच्छा को वास्तविकता में बदलने के लिए 'जनहित' नाम दिया जाता है । इस प्रकार के मिथ्या जनहित को प्रस्तुत कर प्रकृति के वास्तविक चक्र को हानि पहुंचायी जाती है ।
- भौतिकवादी दौड़ के कारण ग्रामीण जनसंख्या का शहरों में पलायन हो रहा है । अतः शहरी जनसंख्या के अधिक हो जाने के कारण उस स्थान पर प्राकृतिक असन्तुलन उत्पन्न हो रहा है ।
- प्राकृतिक स्रोत जैसे गंगा, यमुना आदि नदियों को हानि पहुंचायी जा रही है । मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार इनके मार्ग परिवर्तित किये जा रहे हैं । उनकी जगह कहीं पार्क, कहीं शॉपिंग मॉल बनाए जा रहे हैं । राष्ट्रमण्डल खेलों के लिए पूरा खेलगाँव, मैट्रो डिपो, मॉल्स आदि सब कुछ यमुना नदी के तट पर ही बनाया गया है । इसका पर्यावरण पर क्या प्रभाव होगा इसकी चिंता बहुत कम है ।
- विलासिता की अन्धाधुंध दौड़ में अधिकतर मनुष्य मूलभूत आवश्यकताओं से अधिक सामग्री संकलन यथा विस्तृत या बहुमंजिले भवन, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यकता से अधिक गाड़ियों का संग्रह करने में जुटे हैं । पृथिवी पर एक स्थान पर अधिक दबाव होने के कारण भूकम्प की समस्या को बढ़ावा मिलता है, तथा वाहनों से निकला धुंआ पृथिवी के वायुमण्डल को प्रभावित करता है ।
- अचेतनता सम्बन्धी विचार के प्रभाव के कारण मनुष्य स्वयं को प्रभुत्व–संपन्न मानते हुए संसार की प्रत्येक वस्तु को अपने नियन्त्रण में रखना चाहता है तथा प्रकृति को अपने वश में करना चाहता है । इस कारण वैदिक सनातन परम्परा से समुद्भूत विचार 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[207] की भावना विखण्डित होती हुई प्रतीत होती है ।

---

[207] अयं निज: परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदाचरिताणां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ (अनुपलब्ध सन्दर्भ)

- मनुष्य ने स्वयं को चेतन तथा अन्य सभी को अचेतन स्वीकार कर लिया जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक स्रोतों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार शिथिल होने लगा है ।
- भोगप्रधान प्रवृत्ति के कारण अधिक से अधिक अन्न उपजाने हेतु कीटनाशकों के छिड़काव से पृथिवी के स्वरूप में विषाक्तता की वृद्धि हुई है । इनके प्रयोग से पृथिवी में सूक्ष्म जैव–विविधता नष्ट हो रही है, जिससे कृषि–मित्र जीवों का ह्रास हो रहा है ।
- ओजोन परत पृथिवी पर जीव–जन्तुओं एवं वनस्पति की रक्षा के लिए कवच का कार्य करती है तथा सूर्य द्वारा संप्रेषित गामा आदि घातक विकिरणों को पृथिवी की सतह पर आने से रोकती है । प्रतिवर्ष ओजोन परत अपनी स्वाभाविक स्थिति से क्षतिग्रस्त हो रही है, जिसे 'ओजोन छिद्र' कहा गया है । इस क्षतिग्रस्त छिद्र के कारण सूर्य की घातक विकिरणों को पृथिवी पर आने से नहीं रोका जा सकेगा । इसके फलस्वरूप सूर्य की पराबैंगनी किरणें सीधी पृथिवी पर आने लगेंगी, जिससे मनुष्य में 'त्वचा–कैंसर' तथा 'सन–बैन' जैसे घातक रोग की संभावना हो सकती है ।
- औद्योगिक विकास के फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग भी बढ़ा है । पॉलिथीन उत्पादन भी पर्यावरण के लिए एक समस्या है । अतः लोगों में इस प्रकार की जनचेतना पैदा करनी होगी, जिससे देश की सांस्कृतिक विरासत को समाप्त किये बिना और पृथिवी की सुन्दरता एवं पवित्रता को नष्ट किए बिना जीवन के स्तर को ऊँचा उठाया जा सके । यह वैदिक चिन्तन 'त्यागपूर्वक उपभोग' से ही संभव है ।
- विकास की दौड़ में वनों को काटकर उस भू–भाग को कृषि कार्य के लिए उपयोग में लेने, नये उद्योग स्थापित करने तथा शहरीकरण व नये रास्ते (सड़क) बनाने के लिए प्रयोग में लिया जा रहा है । अतः भूमि कटाव एवं चारागाह की समस्या उत्पन्न हो रही है ।
- घनी आबादी वाले नगरों एवं महानगरों में देश की पवित्र नदियां विशेष रूप से गंगा, गोदावरी, घाघरा, कृष्णा, कावेरी, ब्रह्मपुत्र, महानदी, ताप्ती, साबरमती, इत्यादि जल सम्बन्धित स्रोत को प्रदूषित किया जा रहा है ।
- भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के मूलभूत नियमों में सर्वदा एक सुसंगति, एकात्मकता और परस्पर आदर भाव रहा है । आज सम्पूर्ण समाज में भौतिकता का

वर्चस्व हो गया है । भौतिकता ने घृणा, द्वेष, छल, बल, दुष्टता, स्वार्थ, असत्य, लोभ, निर्दयता को जीवन की वास्तविकता के रूप में स्थापित कर दिया है । इसी अहंकार और अविवेक के प्रमाद में वह निरन्तर प्रकृति का तिरस्कार और शोषण करता जा रहा है ।

अतः वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण जैसी अनेक समस्याओं से ग्रसित है । इन सभी समस्याओं का समाधान वैश्विक दृष्टिकोण से ही संभव है । आज आधुनिक विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है–

''The major problems of our time, the more we come to realize that they cannot be understood in isolation. They are systemic problems, which means that they are interconnected and interdependent.'' [208]

पृथिवी की चेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण –

संसार में मनुष्य सदैव प्रगति और उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहा है । भौतिक उपलब्धियाँ मनुष्य को मनुष्य से एवं प्राकृतिक शक्तियों से प्रतिद्वन्द्विता का कारण बनाती हैं । मनुष्य की प्रगति की अवधारणा संकीर्ण मानसिकता की देन है । यान्त्रिक युग का चिन्तन प्रभुत्व एवं विलासिता को जीवन में प्रगति मानता है । इस विचार ने संसार के समक्ष महाविनाशक शस्त्रास्त्रों का भण्डार लगाकर उसका अस्तित्व ही संकट में डाल दिया है । वर्तमान में उत्पादन में वृद्धि ने पृथिवी के पर्यावरण को जीवन की गुणवत्ता बनाए रखने में असमर्थ एवं असहाय बना दिया है । इस संकीर्ण स्वार्थपरक अवधारणा ने मनुष्य का दूसरे प्राणियों एवं प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया है । मनुष्य प्रकृति के सभी जीवों एवं सम्पदा को अपने उपभोग की वस्तु मानने लगा है । इस भौतिक उन्नति के परिणामस्वरूप प्रकृति के सह–अस्तित्व को धारण करने वाली प्राकृतिक सम्पदा की अपूरणीय क्षति की जा रही है । भारतीय ऋषि सम्पूर्ण प्राकृतिक स्रोत के प्रति अपनी हार्दिक भावना अभिव्यक्त करते रहे हैं ।

ऋषियों की यह मान्यता रही है कि सम्पूर्ण सृष्टि चेतन तत्त्व की ही अभिव्यक्ति है । इस सृष्टि में प्रत्येक का प्रत्येक के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है । वह चेतन शक्ति ही विविध रूपों में अपने आपको अभिव्यक्त करती है । इसलिए परम तत्त्व से सृष्टि का कण–कण व्यक्त हुआ और वह कण–कण में व्याप्त है । मनुष्य और प्रकृति सभी उसी से संचालित हैं

[208] Capra, Fritjof, TheWeb of life, p. 3

। ऋषियों ने इस धारणा को विकसित करते हुए प्रत्येक तत्त्व में देवत्व की प्रतिष्ठा स्थापित की है । हमारे धार्मिक विश्वास, सम्पूर्ण शास्त्र, रीति–रिवाज, पवित्रता–अपवित्रता की मान्यताएं और देवी–देवताओं के स्वरूप की कल्पना आदि सभी इसी संदेश को व्याख्यायित करते हैं । परम सत्ता का प्रत्येक सांसारिक वस्तु में अन्वेषण किया गया है । पृथिवी को सबका आधार मानते हुए भूमि सूक्त में स्पष्ट किया गया है–

''शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती । भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ।'' [209]

यह पृथिवी शान्ति, अन्न, जल आदि देने वाली है, इस भूमि से यह प्रार्थना भी की गयी है कि यह हमें समस्त भोग्य पदार्थ एवं ऐश्वर्य देने वाली हो ।

सृष्टि के अनन्त प्रवाह के प्रतीक रूप में अभिव्यक्त नदियां प्राणदायी जल को हम तक पहुँचाती हैं और खेतों को परितृप्त करती हुई भूमि की उर्वरता को समृद्ध करती हैं । ऋषियों की प्राकृतिक शक्तियों में देवत्व की कल्पना का दार्शनिक सिद्धान्त यह रहा है कि उन्होंने प्रकृति को दिव्य चेतना से युक्त माना । प्राकृतिक पदार्थों के इच्छित प्रयोग को प्रतिषिद्ध किया । ऋषियों ने यह प्रयास किया कि प्रत्येक मनुष्य के मन में यह सिद्धान्त समाहित हो कि सभी वस्तुएं रक्षणीय हैं, उनका प्रयोग तभी करना चाहिए जब वे जीवन के लिए अत्यावश्यक हों । ऋषियों के सद्भाव से ही प्राचीन भारत में प्रकृति की सभी वस्तुओं के प्रति यही भाव रहा है । भारतीयों ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नामक पञ्चमहाभूतों में दिव्य सत्ता (चेतना) को पहचाना तथा प्रकृति की अभिव्यक्तियों में अपना ध्यान केन्द्रित कर दिव्यत्व को ग्रहण किया । पृथिवी को अपनी माता माना और प्रातःकालीन जागरण के समय पैर रखने से पूर्व प्रार्थना योग्य समझकर इसकी स्तुति की ।

वेदों में प्राकृतिक शक्तियों में देवत्व भाव के दर्शन करके उनमें व्याप्त परम सत्ता को इस प्रकार प्रणाम किया गया है–

''यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।

यो ओषधीषु वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥'' [210]

---

[209] अथर्व. 12/1/59

[210] श्वेताश्व. 2/17

प्राकृतिक शक्तियों में देवभाव का साक्षात् करके मनुष्यों के उपकार के लिए उसकी विशिष्ट रूप में कल्पना करना ऋषियों की प्रज्ञा के बहुज्ञत्व का प्रमाण है । इससे ऋषियों ने दैनिक उपयोग के पदार्थों के सीमित प्रयोग के लिए मानवों को उपदिष्ट किया है । विशिष्ट शक्तियों के दिव्य भाव से भी परिचित कराया है । विशिष्ट शक्तियों में जो भी तत्त्व मनुष्य के लिए सामान्य की अपेक्षा अधिक उपकारक होता है, उस तत्त्व के प्रति रुचि एवं अपनत्व व पूज्यत्व बढ़ाने के लिए देवत्व भावना स्थापित की । इस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों, दिव्यभाव युक्त चेतन पदार्थों में देवत्व कल्पना स्थापित करना वैदिक परम्परा का अप्रतिम पक्ष है, जिससे मनुष्य अनायास ही प्राकृतिक चेतन तत्त्व से लाभान्वित हो सके । चेतन तत्त्व में देवभाव स्थापित करने में साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों की यही उत्कृष्ट सदिच्छा है ।

आधुनिक वैज्ञानिक भी किसी न किसी रूप में पृथिवी को जीवित तन्त्र स्वीकार करने लगे हैं, जो इसके सीमित उपयोग पर बल देता है । वैज्ञानिक सुभाषचन्द्र बोस ने अपने वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक वस्तु में चेतनता का भाव है । मनुष्य में वह अधिक प्रकृष्ट रूप से परिलक्षित होता है इसलिए सर्वग्राह्य है परन्तु धातु तथा पेड़–पौधे भी जीवित है । इनमें चेतना न्यून मात्रा में अभिव्यक्त होती है जो हमारी इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं होती ।

“In 1899 Bose began a comparative study of the non-living like metals and the animals. Experimentally he found that metals become less sensitive if continuously used………. Bose found that plants also responded in the similar way like metals.[211]

जेम्स लवलॉक ने भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर पृथिवी को जीवित सत्ता माना है तथा उसका नामकरण ‘Gaia’ किया है, जो वैदिक सनातन परम्परा के समतुल्य द्रष्टव्य है ।

चेतनता सम्बन्धी दृष्टिकोण का पर्यावरण पर प्रभाव –

- वैदिक उपायों के अन्तर्गत सर्वप्रथम पृथिवी के महत्त्व को स्वीकार करना होगा एवं जनसामान्य को मानसिक रूप से सज्जित करना होगा कि पृथिवी की सुरक्षा में ही सम्पूर्ण प्राणिजगत् की सुरक्षा सन्निहित है । पृथिवी पर ही सभी मनुष्य उत्पन्न होते हैं एवं इसी का आधार पाकर अपने सभी कार्य निष्पादन करने में समर्थ हैं । अतः मन्त्रानुसार ये पञ्च मानव (विद्वान, शूरवीर, व्यापारी, कारीगर तथा सेवावृत्ति वाले मानव) इसकी सेवा में सन्नद्ध हैं–*‘‘त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं*

211 Jitatmananda, Swami, Holistic Science and Vedanta, p. 2-3

चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥'' [212]

- मनुष्यों को पाञ्चभौतिक तत्त्वों, वृक्ष–वनस्पति, पशु–पक्षी, जीव–जन्तुओं आदि के साथ भोक्ता–भोग्य के स्थान पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को जीवन में धारण करने हेतु उपदेश दिया गया है । असन्तुलन सम्बन्धी सम्पूर्ण समस्या का मूल यही है कि अद्यतन समाज स्वयं को भोक्ता और अन्य समस्त को भोग्य के रूप में देखता है । इसका उपाय प्रकृति सहकार दर्शन है जो वैदिक विचारधारा की चिन्तन पद्धति है । भूमि सूक्त के अनुसार मातृभूमि के मननशील मानवों में परस्पर ऐक्य तथा मैत्री भाव होना अत्यावश्यक है– *''असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।''*[213]
- पृथिवी की रक्षा हेतु वनों के असन्तुलित कटाव एवं खनिज हेतु अव्यवस्थित खुदाई नहीं करनी चाहिए । सन्तुलित मात्रा में वृक्ष काटे जाएं एवं इतनी ही खुदाई की जाए कि पृथिवी के व्रण अधिक गहरे न हों और शीघ्र पूर्ति हो जाए । सन्तुलित एवं व्यवस्थित कार्य–प्रणाली को ही प्रयोग में लाया जाना चाहिए, जिसे व्यक्त करते हुए भूमि सूक्त में ऋषि कहते हैं– *''यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु । मा ते मर्म विमृग्वरि म ते हृदयमर्पिपम् ॥''* [214]
- पृथिवी समान भाव से सभी को स्वार्थ रहित होकर अन्न, जल, औषधि, खनिज इत्यादि प्रदान करती है । ऋषि का यह कथन है कि ऐसी पृथिवी के प्रति हम कभी अहित का भाव न रखें एवं सदैव इसके प्रति चारूवाक् कहें– *''ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम् । ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारू वदेम ते ॥''* [215]
- वैदिक उदात्त भावना ही पारिस्थितिकीय समस्याओं से समाज का त्राण कर सकती है । जब हम पृथिवी को माता और स्वयं को इसका पुत्र मानेगें तो उससे उतना ही लेंगे, जिससे उसमें हमेशा देते रहने की सामर्थ्य बनी रहे । जीवनयापन करते हुए प्रकृति से उतना ही प्राप्त करना चाहिए जो अत्यावश्यक हो, और जिससे किसी को क्षति न हो– *''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''* [216] । इसलिए वैदिक उपदेशों का गम्भीरता से विश्लेषण करना चाहिए ।

---

[212] अथर्व. 12/1/15
[213] वही 12/1/2
[214] वही 12/1/35
[215] वही 12/1/56
[216] वही 12/1/12

- अन्योन्याश्रय की भावना के अभाव के कारण ही सृष्टि की जैविक सम्पदा नष्ट हो रही है । मनुष्य के कृत्यों द्वारा निरन्तर जीवों की प्रजातियां नष्ट हो रही हैं, जबकि सम्पूर्ण सृष्टि अन्योन्याश्रय तन्त्र के आधार पर ही गतिमान् है ।
- वैदिक चिन्तन पर दृष्टिपात करने पर निश्चय ही कुछ कालावधि में पर्यावरणीय असन्तुलन पर विजय पाना सम्भव है । जहां यह सन्देश दिया है– *''सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ।''* [217] अर्थात् सूर्य द्युलोक में स्थित होता हुआ हमारी रक्षा करे, वायु अन्तरिक्ष में और अग्नि पार्थिव पदार्थों में स्थित होकर हमारी रक्षा करे । द्युलोक में स्थित सूर्य ऊर्जा का अजस्र स्रोत है । यदि इससे पृथिवी की ओर प्रवहमान ऊर्जा का समुचित उपयोग किया जाए तो सम्पूर्ण ऊर्जा की समस्या का हल सम्भव है । परमाणु ऊर्जा से बिजली उत्पादन पर्यावरण को प्रदूषित करके घातक सिद्ध होता है । आधुनिक ऊर्जा स्रोत के प्रयोग से उत्पन्न प्रदूषण भी प्रयोगाभाव के कारण नहीं होगा ।

पृथिवी की रक्षा के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि पृथिवी की स्वाभाविकता को यथावत् बनाए रखा जाए क्योंकि यदि हम पर्यावरण की निसर्ग सिद्ध व्यवस्था पर कुठाराघात करते चले जाएं और दूसरी तरफ उसे स्वस्थ बनाये रखने का उपाय भी करते रहें तो भी सफलता प्राप्ति सम्भव नहीं है । प्रकृति के उपासक होकर समग्र सृष्टि में देवत्व चेतना मानते हुए ऋषियों ने यह सन्देश दिया है कि प्रकृति–सहकारिता की भावना से युक्त होकर, पवित्र बुद्धि युक्त, दीर्घकालीन हित को ध्यान में रखते हुए ही पृथिवी को सम्यक् पालित एवं पोषित किया जा सकता है । अन्ततः प्रदूषण रूपी रक्तबीज को वैदिक दृष्टिकोण द्वारा समाप्त करना सम्भव है ।

पर्यावरण सुरक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास–

अनियोजित विकास, औद्योगिकीकरण, वैचारिक दृष्टिकोण, प्रभावी कानून तथा जागरुकता के अभाव ने पृथिवी पर अनेक समस्याओं को उत्पन्न किया है । प्रदूषित नदियां, विषैले पेयजल, भूक्षरण, दूषित वायु, निरन्तर संकुचित होते वन्य–जीव आदि के कारण भारत पर्यावरण संकट का सामना कर रहा है । पर्यावरण का संरक्षण राज्य का दायित्व तो है ही, नागरिकों का भी यह संवैधानिक दायित्व है कि वे प्राकृतिक पर्यावरण, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य–जीव हैं, की रक्षा करे और उनका संवर्धन करे ।[218] राष्ट्रीय एवं

[217] ऋ. 10/158/1

[218] पर्यावरणीय सम्बन्धी कानून एक अध्ययन, मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान, पृ. 254, (संविधान के अनुच्छेद –51 (1) छ)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पर्यावरण रक्षण हेतु प्रयास किए गये हैं । देश के लिए स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण सुनिश्चित करने में सहायता के लिए सन् 1980 में पर्यावरण विभाग की स्थापना की गयी । 1985 में इसे पर्यावरण और वन मन्त्रालय बना दिया गया । अब यह मन्त्रालय भारत सरकार के पर्यावरण तथा वन कार्यक्रमों का नियोजन, प्रोन्नयन, समन्वयन, तथा कार्यान्वयन के प्रशासनिक प्रारूप की प्रमुख संस्था है । यह मन्त्रालय संयुक्त–राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) हेतु देश में शीर्ष संस्था की भूमिका निभाता है । यह कानूनी व्यवस्था के अनुसार वनस्पति, जीव–जन्तुओं, वनों तथा वन्य–जीवों के संरक्षण तथा सर्वेक्षण, प्रदूषण नियन्त्रण, वृक्षारोपण तथा अवकृष्ट क्षेत्रों के पुनर्जन्म और पर्यावरण संरक्षण का कार्य करता है ।[219]

पर्यावरण–संरक्षण अधिनियम, 1986 (ईपीए) भारत की उस प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए पारित किया गया, जिसमें पर्यावरण संरक्षण हेतु एक कानूनी प्रारूप प्रदान करने की बात कही गयी थी । इतना ही नहीं सन् 1972 में स्टॉकहोम में मानव पर्यावरण सम्बन्धी संयुक्त–राष्ट्र सम्मेलन में भाग लेते हुए भारत ने इस दिशा में कानून बनाए जाने की जो बात कही थी, यह अधिनियम उसी दिशा में एक प्रयास कहा जा सकता है ।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम केन्द्र सरकार को वे सभी शक्तियाँ और दायित्व प्रदान करता है, जिनसे वह स्वस्थ और सुरक्षित पर्यावरण सुनिश्चित कर सके । इस प्रकार सरकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के लिए सुरक्षा उपाय निर्धारित करेगी और उनका अनुपालन कराएगी ।

‘पर्यावरण–संरक्षण अधिनियम, 1986’[220] (ईपीए) के अन्तर्गत सरकार द्वारा किये जाने वाले उपाय –

- पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम, नियन्त्रण और कमी के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार करना और उसे लागू करना ।
- पर्यावरण की गुणवत्ता तथा पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन अथवा प्रस्ताव हेतु मानदण्ड निर्धारित करना ।
- ऐसे क्षेत्रों की पहचान करना, जिसमें कुछ उद्योग नहीं लगा सकते अथवा कुछ सुरक्षा उपायों को सुनिश्चित करने के बाद ही लगाये जा सकते हैं ।

[219] पर्यावरणीय सम्बन्धी कानून एक अध्ययन, मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान, पृ. 255, / पर्यावरण और वन मन्त्रालय, भारत, ‘प्रस्तावना’),/ वेबसाइट http://envfor.nic/welcome.Html.

[220] पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 धारा 3 । वेबसाइट http://envfor.nic.in/legis/env/env1.html

- इसके लिए प्रक्रियाएँ तथा सुरक्षा उपाय को निर्धारित करना ।
- ऐसी दुर्घटनाओं की रोकथाम के उपाय करना, जिनसे पर्यावरण प्रदूषण फैल सकता है ।
- खतरनाक पदार्थों के प्रचलन से सम्बन्धित नियम और मानदण्ड निर्धारित करना ।
- उन प्रक्रियाओं की जांच करना, जिनसे प्रदूषण फैल सकता है तथा कारखानों आदि का निरीक्षण करना ।

1972 में स्टॉकहोम (स्वीडन) में सम्पन्न हुए संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन के परिणामस्वरूप UNEP (United Nations Environment Programme) की स्थापना हुई । इसका मुख्यालय नैरोबी (केन्या) में है । इसका उद्देश्य समस्त देशों को उनके प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करने, वायु प्रदूषण, भूमि की गुणवत्ता में गिरावट तथा मरुस्थलीय क्षेत्र में प्रसार को रोकने में सहायता प्रदान करना है । 1992 में 'पृथिवी सम्मेलन' (रियो डि जेनेरियो) में UNEP के सहयोग से 'एजेण्डा-21' नामक कार्यक्रम आरंभ किया गया । UNEP के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं–

1) पर्यावरण आकलन और पूर्व चेतावनी ।
2) संपूर्ण संयुक्त राष्ट्र प्रणाली में पर्यावरण गतिविधियों को बढावा देना ।
3) पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित प्रौद्योगिकी की जानकारी के आदान–प्रदान की व्यवस्था करना ।
4) पर्यावरण मुद्दों पर लोगों को अधिक जागरूक करना ।
5) सदस्य देशों की सरकारों को तकनीकी, कानूनी और संस्थागत परामर्श उपलब्ध कराना ।
6) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय कानूनों तथा विश्व व्यापार के बीच इस उद्देश्य से सम्बन्धों को लगातार नियोजित करना कि नये व्यापारिक आदान–प्रदान से पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े ।

UNEP की प्रमुख उपलब्धियां इस प्रकार हैं–

- विश्व के पर्यावरण पर निगरानी रखने के लिये एक प्रणाली– "Global Environment Monitoring System" (GEMS) की स्थापना ।
- विश्व के संसाधनों के बारे में जानकारी एकत्र करने की प्रणाली– "Global Resource Information Database" (GRID) की स्थापना ।

- GEMS में 25 अंतर्राष्ट्रीय निगरानी केन्द्रों के नेटवर्क हैं, जबकि GRID (ग्रिड) में 12 नेटवर्क शामिल हैं ।
- पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करने में संस्थाओं व व्यक्तियों की सहायता हेतु एक विश्वव्यापी नेटवर्क "The Global Environment Information Exchange Network" (इन्फोटेरा) संचालित किया जा रहा है । इसके 179 देशों में राष्ट्रीय केन्द्र हैं, जो संगठनों व आम लोगों को पर्यावरण के बारे में सूचनाएं प्रदान करते हैं ।
- जिनके जहरीले होने की आशंका है ऐसे रसायनों पर निगरानी के लिये "इंटरनेशनल रजिस्टर ऑफ पोटेंशियली टॉक्सिक केमिकल्स" (IRPTC) बनाया गया हैं ।
- एक वेब आधारित अंतर क्रियात्मक केटेलॉग तथा बहुआयामी दिग्दर्शक (UNEP net) की शुरुआत की गई है, जो पर्यावरणीय विषयों पर प्रासंगिक सूचनाएं प्रदान करता है ।
- कैम्ब्रिज (यूनाइटेड किंगडम) में जून 2000 में स्थापित "World Conservation and Monitoring Centre "(WCMC) यूएनईपी के सबसे बड़े जैव विविधता आकलन केन्द्र के रूप में उभरा है ।
- वर्ष 2002 में UNEP द्वारा पर्यावरण रक्षा हेतु ओजोन परत के क्षय को रोकने के लिये "ओजोन एक्शन कार्यक्रम" (OAP) आरम्भ किया गया ।
- UNEP सम्पूर्ण विश्व में समाज के सभी वर्गों मे पर्यावरणीय चेतना के विकास हेतु एक विश्वस्तरीय पर्यावरण नागरिक कार्यक्रम चलाता है ।
- मई, 2003 में UNEP द्वारा प्रथम वैश्विक मंत्रिस्तरीय पर्यावरण मंच का आयोजन स्वीडन में किया गया ।
- पर्यावरण के क्षेत्र में UNEP द्वारा उल्लेखनीय योगदान करने वाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं को "सासाकोवा पुरस्कार" प्रदान किया जाता है ।

1) जैव विविधता एवं पर्यावरण सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तिथियां–

तिथि	*जिस दिवस के रूप में मनाया जाता है*
21 मार्च	विश्व वानिकी दिवस
22 मार्च	विश्व जल दिवस

22 अप्रेल	पृथिवी दिवस
8 मई	विश्व प्रवासी पक्षी दिवस
22 मई	अंतर्राष्ट्रीय जैविक विविधता दिवस
5 जून	विश्व पर्यावरण दिवस
17 जून	मरुस्थलीकरण एवं अनावृष्टि की रोकथाम हेतु अंतर्राष्ट्रीय दिवस
16 सितम्बर	ओजोन परत के रक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय दिवस
3 अक्टूबर	विश्व प्राकृतिक दिवस
16 अक्टूबर	विश्व वन्य प्राणी दिवस
3 नवम्बर	विश्व पर्यावरण संरक्षण दिवस

2) संयुक्तराष्ट्र–जलवायु सम्मेलन –

1972 :– संयुक्त राष्ट्र ने स्टॉकहोम में पर्यावरण से सम्बन्धित एक सम्मेलन का आयोजन किया और उसके बाद पर्यावरण मुद्दा बन गया ।

1985 :– जलवायु परिवर्तन पर पहला बड़ा सम्मेलन आस्ट्रिया की राजधानी वियना में सम्पन्न हुआ था । इस सम्मेलन में चेतावनी दी गयी थी कि ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि से तापमान में वृद्धि होगी तथा 2050 तक समुद्री जल स्तर एक मीटर तक बढ़ जाएगा ।

1988 :– संयुक्त राष्ट्र द्वारा जलवायु परिवर्तन पर एक पैनल का गठन किया गया जिसका उद्देश्य वैज्ञानिक शोधों एवं अध्ययन का विश्लेषण करना तथा उस पर रिपोर्ट प्रकाशित करना था ।

1990 :– आई.पी.सी.सी. (Intergovernmental Panel on Climate Change) ने अपनी पहली रिपोर्ट जारी की जिसमें यह बताया गया कि पिछले 100 वर्षों में वैश्विक तापमान में 0.5 डिग्री की वृद्धि हो गई है ।

1992 :– रियो डि जनेरियो में पृथ्वी सम्मेलन हुआ । इसमें करीब 100 राष्ट्राध्यक्षों–शासनाध्यक्षों ने हिस्सा लिया । इन देशों के प्रतिनिधियों ने उचित विकास के लिये व्यापक कार्यवाही योजना 'एजेंडा 21' स्वीकृत किया ।

1997 :– सयुंक्त राष्ट्र की आमसभा की विशेष बैठक में 'पृथ्वी सम्मेलन +5' आयोजित हुई । बैठक में 'एजेंडा 21' को लागू करने सम्बन्धी कार्यक्रम पर आम सहमति बनी ।

1998 :– अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन छिद्र में 2 करोड़, 50 लाख वर्ग किलोमीटर की बढ़ोतरी का पता चला ।

1999 :– सिएटल सम्मेलन से विश्व व्यापार सम्मेलन की पर्यावरणीय व सामाजिक नीतियां आलोचना के दायरे में आयी ।

2000 :– सयुंक्त राष्ट्र की आमसभा ने निर्णय लिया कि धारणीय विकास के मुद्दे पर 2002 में एक शिखर सम्मेलन आयोजित किया जायेगा ।

2001 :– आई.पी.सी.सी. (Intergovernmental Panel on Climate Change) की तीसरी रिपोर्ट प्रकाशित की गई जिसमें वैश्विक तापमान में अभूतपूर्व वृद्धि की चेतावनी दी गई ।

2001 :– (अप्रेल) शिखर सम्मेलन के लिये प्रारम्भिक समिति की पहली बैठक हुई । इसमें प्रक्रिया सम्बन्धी मामलों पर विचार किया गया ।

2001 :– (जुलाई–अगस्त) सयुंक्त राष्ट्र द्वारा पांच क्षेत्रीय बैठकें हुई, जिनमें धारणीय विकास के क्षेत्रों मे काम करने वाले महत्त्वपूर्ण लोगों व विशेषज्ञों ने नये विचार व्यक्त किये ।

2001 :– (सितम्बर–नवम्बर)– 5 क्षेत्रीय प्रारम्भिक समितियों की बैठक हुई, जिसने प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित पिछले दस वर्ष के दौरान धारणीय विकास को प्राप्त करने की दिशा में हुई प्रगति व अड़चनों की समीक्षा की गयी थी ।

2002 :– (25 मार्च–5 अप्रैल)– आगे की कारवाई पर विचार करने के लिये न्यूयार्क में प्रारम्भिक समिति की तीसरी बैठक हुई ।

2002 :– (27 मई–7 जून)– इंडोनेशिया में प्रारम्भिक समिति की मंत्री स्तरीय चौथी बैठक हुई । इसमें शिखर सम्मेलन के दौरान दुनिया के नेताओं द्वारा बातचीत किये जाने वाले मुद्दों पर सहमति बनी ।

2007 :– आई.पी.सी.सी. (Intergovernmental Panel on Climate Change) ने अपनी चौथी रिपोर्ट जारी की जिसमें 2035 तक हिमालय के ग्लेशियर के पूरी तरह पिघल जाने की बात कही गयी थी ।

2008 :– इंडोनेशिया के बाली शहर में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसका उद्देश्य वर्ष 2012 में खत्म हो रहे क्योटो प्रोटोकॉल की जगह लेने वाले नए समझौते की रूपरेखा तैयार करना था ।

2009 :– कोपनहेगन में सयुंक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन पर 'कोप 15' सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसका उद्देश्य उत्सर्जन कटौती हेतु बाध्यकारी संधि अपनाने की योजना थी, लेकिन यह भी अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो पाई ।

2010 :– मैक्सिको के कानकुन शहर में 'कोप–16' सम्मेलन आयोजित हुआ । जिसका उद्देश्य क्योटो प्रोटोकॉल की जगह लेने वाली दूसरी बाध्यकारी संधि करना था ।

2011 :– दक्षिण अफ्रीका के डरबन में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन का 'कोप 17' सम्मेलन का आयोजन हुआ ।

2012 :– सतत् विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन 'रियो प्लस–20' शिखर वार्ता में हरित अर्थव्यवस्था को केन्द्र में रखकर रियो डि जेनेरियो में सम्मेलन सम्पन्न हुआ ।

शोध विषय को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सम्मेलनों का ही स्पष्टीकरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

मानव पर्यावरण सम्बन्धी संयुक्त–राष्ट्र सम्मेलन, स्टॉकहोम, 1972 –

वर्ष 1972 में संयुक्त–राष्ट्र द्वारा मानव पर्यावरण सम्बन्धी विषय पर विचार करने के लिए स्टॉकहोम में एक सम्मेलन आयोजित किया गया । इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य

'एक स्वस्थ और लाभकर पर्यावरण के लिए मानव समुदाय के अधिकारों' के बारे में जानकारी देना था ।[221] इस सम्मेलन में पर्यावरण विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग देखने को मिला और इसका परिणाम यह हुआ कि 100 से अधिक देशों ने अपने यहाँ पर्यावरण मंत्रालय की शुरूआत की ।[222] यह इस विषय को लेकर आयोजित होने वाली पहली बैठक थी, जिसमें विकासशील देशों ने भी भाग लिया ।

ब्रेटलैंड आयोग 1987–

1987 में पर्यावरण तथा विकास सम्बन्धी सयुंक्त–राष्ट्र आयोग (ब्रेटलैंड आयोग) ने 'हमारा सांझा भविष्य' शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रकाशित की जो 'सतत विकास' को व्यापक और सर्वग्राह्य अवधारणा के रूप में प्रस्तुत करती है । इस रिपोर्ट में इस बात पर बल दिया कि पृथ्वी हमारी वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करती रह सके ।[223] इस रिपोर्ट में सतत विकास की अवधारणा के महत्त्वपूर्ण प्रावधानों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा गया– 'विकास का तात्पर्य, कुछ लोगों द्वारा अधिक से अधिक लाभ कमा लेना नहीं हैं । इसका तात्पर्य है, सबके लिये जीवन स्तर सुधारना । लेकिन यह हमारे प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध विनाश करके अथवा पर्यावरण को प्रदूषित करके नहीं किया जाना चाहिए ।'[224] ब्रेटलैंड आयोग ने इन्दिरा गांधी के इस कथन की पुष्टि करते हुए इस विचार का समर्थन किया, कि सामाजिक–आर्थिक विकास न होने से पर्यावरण का ह्रास होता है और इसके परिणामस्वरूप आगे विकास नहीं हो पाता । इस विचार के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण–संरक्षण और विकास को नई परिभाषा मिली तथा सतत विकास की वर्तमान अवधारणा को तेजी से अपनाया जाने लगा ।

पृथ्वी शिखर सम्मेलन, रियो डि जेनेरिया, ब्राजील, 1992–

पर्यावरण और विकास सम्बन्धित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन जिसे पृथिवी शिखर सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है, का आयोजन ब्राजील के रियो डि जेनेरियो में किया गया । लगभग 100 विश्व नेता यहां रियो प्लस–20 पर्यावरण शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए एकत्र हुए । इस सम्मेलन में अपूरणीय प्राकृतिक संसाधनों के विनाश को रोकने हेतु प्रयास

---

[221] पर्यावरणीय सम्बन्धी कानून एक अध्ययन, मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान, पृ. 226, /संयुक्त–राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, 'मानव पर्यावरण सम्बन्धी संयुक्त–राष्ट्र सम्मेलन की रिपोर्ट: स्टॉकहोम 1992, / वेबसाइट: http://www.unep.org/documents/multilingual article

[222] "दि रोड फ्रॉम स्टॉकहोम टु जोहान्सबर्ग,यूनाइटेड नेशंस क्रॉनिकल, http://www.un.org./pubs/chronicle2002

[223] पर्यावरणीय सम्बन्धी कानून एक अध्ययन, मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान, पृ. 227

[224] वही

किया गया । सम्मेलन में इस बात पर भी बल दिया गया, कि सामाजिक, पर्यावरणीय तथा आर्थिक आवश्यकताओं में उचित सन्धारणीय सन्तुलन सुनिश्चित किया जाए । इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि लोगों के बीच प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति जागरुकता और सम्मान का भाव जाग्रत करने के लिए क्या किया जाए ?[225] इस सम्मेलन में 'एजेंडा 21' तैयार किया गया । इसमें विकास के साथ–साथ गरीबी निवारण, जनसंख्या नियन्त्रण, मानव स्वास्थ्य को प्रमुखता देने, वायुमण्डल की सुरक्षा, भू–संसाधनों का नियोजन और प्रबन्धन, जैव विविधता संरक्षण इत्यादि सम्मिलित है ।[226]

क्योटो प्रोटोकाल–

जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी संयुक्त–राष्ट्र की वैश्विक रूपरेखा 'क्योटो प्रोटोकॉल' भूमंडलीय तापमान में वृद्धि से सम्बन्धित एक अंतर्राष्ट्रीय सन्धि है । 11 दिसम्बर 1997 को इसे जापान के क्योटो शहर में हस्ताक्षर के लिए रखा गया । 16 फरवरी 2005 से यह सन्धि लागू हुई । इस सन्धि के समर्थक देशों को कार्बन–डाई–आक्साइड गैस के उत्सर्जन सहित 5 अन्य ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन में कमी लाने की प्रतिबद्धता व्यक्त करनी होती है । यदि ये देश इन गैस के उत्सर्जन में कमी लाने में असफल रहते हैं तो उन्हें उत्सर्जन 'ट्रेडिंग' का सहारा लेना पड़ता है । यह उत्सर्जन ट्रेडिंग वायु प्रदूषण का एक प्रस्तावित समाधान है । इसके अन्तर्गत सरकारी एजेन्सियां प्रत्येक प्रदूषक के लिए अन्तिम सीमा तय करती हैं । जो समूह अन्तिम सीमा से अधिक गैस का उत्सर्जन करना चाहते हैं, वे उन्हीं समूहों से उत्सर्जन 'क्रेडिट' खरीद सकते हैं, जो निर्धारित सीमा से अधिक उत्सर्जन नहीं करना चाहते । हरित गृह गैस के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी औद्योगिक राष्ट्र हैं और कुल गैसीय उत्सर्जन के 55% हिस्से के लिए वे ही जिम्मेदार हैं । हरित गृह गैस का सर्वाधिक उत्पादक राष्ट्र अमेरिका ही है जो 25% गैस उत्सर्जन करता है । संधि के प्रभावी होने में विलम्ब हुआ, क्योंकि अमेरिका ने संधि से पृथक् रहने की घोषणा करके इस दिशा में गतिरोध उत्पन्न कर दिया था । अमेरिका के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया ने भी 'क्योटो प्रोटोकोल' से पृथक् रहना उचित समझा ।

रियो प्लस–20 पृथिवी शिखर सम्मेलन–

---

[225] पर्यावरणीय सम्बन्धी कानून एक अध्ययन, मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान, पृ. 227,

[226] वही पृ. 229 / संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, 'एजेंडा 21', वेबसाइट http://www.unep/org/documents.multilingual

सतत् विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन 'रियो प्लस–20' शिखर वार्ता में हरित अर्थव्यवस्था केन्द्र में है । यह विश्व में पर्यावरण को होने वाले खतरों और पारिस्थितिक न्यूनताओं को दूर करते हुए सभी देशों के नागरिकों के हित और सामाजिक विषमताओं को दूर करने की दिशा में कार्य करने की एक प्रणाली है । हरित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें विश्व के सभी देशों में सार्वजनिक और निजी निवेश करते समय ऐसी बातों का ध्यान रखा जाए जिससे कार्बन उत्सर्जन और उससे होने वाले प्रदूषण को कम से कम किया जाए , उर्जा और संसाधनों की उत्पादकता बढ़े तथा जैव विविधता और पर्यावरण की सेवाओं को होने वाले नुकसान में कमी लाई जा सके । हरित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक समानता और पृथिवी पर निवास करने वाला प्रत्येक प्राणी सम्मिलित है । ऐसे में सभी देशों का यह दायित्व कि ऐसी आर्थिक व्यवस्था बने जिसमें यह सुनिश्चित किया जा सके कि सभी को सन्तोषजनक जीवन स्तर और सतत् विकास का व्यक्तिगत और वैश्विक अवसर मिले । [227]

'रियो प्लस–20' पृथिवी सम्मेलन में आयोजित राष्ट्रमण्डल कार्यक्रम में तीन क्षेत्रीय समूहों ने जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने और सतत् विकास को बढावा देने के लिए मिलकर काम करने को लेकर दो ऐतिहासिक समझौतों पर हस्ताक्षर किये । इस वर्ष रियो पृथिवी सम्मेलन के आयोजन के 20 वर्ष पूर्ण हुए हैं । ब्राजील के रियो डि जेनेरियो में 'संयुक्त राष्ट्र के सतत् विकास सम्मेलन' में बुधवार को 'प्रशान्त क्षेत्रीय पर्यावरण कार्यक्रम के सचिवालय' , 'भारतीय सागर आयोग' (आईओसी), और 'कैरेबियन कम्यूनिटी क्लाइमेट चेंज सेन्टर' (5 सीज) ने समझौतों पर हस्ताक्षर किया । राष्ट्रमण्डल सचिवालय और तीन क्षेत्रीय संगठनों की और से आयोजित 'एक्रास द रिजन्स: स्माल आईलैंड डेवलेपिंग स्टेट्स साल्यूशन फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट' शीर्षक के पैनल डिस्कशन में इन समझौतों पर हस्ताक्षर हुआ । राष्ट्रमण्डल सहायक महासचिव रैंसफोर्ड स्मिथ ने इसके लिए तीनों संगठनों को बधाई दी । उन्होंने कहा कि वे जलवायु परिवर्तन से निपटने के क्षेत्र में ऐसी ही अपेक्षा चाहते हैं । [228]

केन्द्र में पृथिवी विज्ञान मन्त्रालय (Ministry of Earth Science) के नाम से नये मंत्रालय के सृजन का निर्णय मई 2006 में किया गया । इस प्रकार सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयास यद्यपि श्लाघनीय हैं परन्तु स्थायी समाधान नहीं हैं ।

[227] राष्ट्रीय सहारा, 22 जून 2012, पृ. 1
[228] वही, पृ. 12

उपसंहार

चेतना और पदार्थ के बीच का सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है । चेतना के समुचित ज्ञान के बिना हम बाह्य वस्तुओं की सम्पूर्ण व्याख्या नहीं कर सकते हैं । पदार्थ को सम्पूर्णता में जाने बिना चेतना को पूर्ण रूप में जानना कठिन है । अतः पृथिवी को चेतन मानकर उसके प्रति उसी प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करने से समाज में सतत् उन्नति एवं प्रसन्नता का प्रसार होगा । आज किसी विशेष वस्तु की तुलना में हमें एक सुधारक अवधारणा, जो विश्व को समग्रत: देखने में सहायक हो, की आवश्यकता है । इस दृष्टि से यह भी महत्त्वपूर्ण है कि आध्यात्मिक और वैज्ञानिक विकास साथ–साथ हो । आध्यात्मिक चेतना विनाश व क्षति का कारण कदापि नहीं होती है । विज्ञान व धर्म दोनों का मुख्य उद्देश्य मानवता की सहायता एवं सेवा करना है । इस सिद्धान्त पर उनके बीच संधि करना सम्भाव्य है । इस सदी में विज्ञान एक ऊँचे स्तर पर पहुंच गया है । हम पदार्थ को वस्तुनिष्ठ रूप में परमाणु तक वर्णित कर सकते हैं किन्तु अब क्वाण्टम सिद्धान्त के विचारों के विकास के साथ वस्तुओं को पूर्णतः वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता है । मानव संसाधन मात्र बाह्य वस्तुओं के अन्वेषण तक सीमित हैं । आंतरिक अध्ययन की पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती । अन्त:चिन्तन केवल धार्मिक व्यवहार नहीं है अपितु मानव ज्ञान के विस्तार के लिए भी हमें और अधिक अन्त:चिन्तन की आवश्यकता होती है ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी अकेले ही नई सहस्राब्दी की समस्याओं को हल करने में असमर्थ है । हमें अपने कर्मों, शोध योजनाओं और शोध लक्ष्य के चयनार्थ अतिरिक्त निर्देशिका की आवश्यकता है । इस निर्देशिका का नैतिकता, दर्शन और आस्था के साथ सरोकार होना आवश्यक है । हमें कोई नयी नैतिकताओं का आविष्कार नहीं करना है । हमारे नैतिक तन्त्रों की हजारों साल पुरानी परम्परा है । वे मानव सभ्यता की स्थायी आधारशिलाएं हैं । नैतिक मूल्य, धर्म, आरम्भिक सर्वचेतनावादी (Animistic) और जीववादी (Shamanistic) अभिव्यक्ति से लेकर बौद्धिक सम्प्रदायों तक में अंतः–स्फुरित हैं । यदि जेम्स लवलॉक नासा (NASA) का शोध विज्ञानी होते हुए 'Gaia'(Earth Goddess/Mother Earth) पर प्रयोग कर सकता है तो उससे भी प्राचीन गंभीरतम विचारधाराओं का स्त्रोत वेद जहां विचारों को सारगर्भित एवं व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है, पर वैज्ञानिक शोध वैश्विक नैतिक व्यवस्था हेतु अधिक फलप्रद स्रोत हो सकते हैं । अथर्ववेद के भूमि सूक्त में स्पष्ट कहा गया है –

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥'' [229]

पृथिवी हमारी माता है, हम इसकी सन्तान हैं । पर्जन्य (मेघ) द्वारा धान्यादिक उत्पन्न होते हैं, इसलिए हम सबका वह पालक है । इस प्रकार 'पृथिवी माता' यह चिन्तन हमारी वैदिक सनातन परम्परा में कई हजार वर्ष पूर्व से ही चला आ रहा है । जिसके आधार पर यह कहा जाता है कि 'विश्वं भवत्येकनीडम्'[230] इस सिद्धान्त पर सम्पूर्ण भारतीय जीवन शैली आधारित है । वैदिक परम्परा साम्प्रदायिक भावना को हतोत्साहित करती हुई स्वयं परमात्मा तथा इनके बीच सम्बन्ध की मूल प्रकृति को वास्तविक रूप में जानने पर बल देती है । अतः यह धर्म का विज्ञान है । उदाहरण के लिये आइन्सटाइन को यह कहते हुए उद्धृत किया जाता है–

''Science without religion is lame- *Religion without science is blind.''* [231]

धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है, विज्ञान के बिना धर्म अंधा है । धर्म एवं विज्ञान पृथक् नहीं हैं, ब्रह्माण्ड के वैज्ञानिक अन्वेषण (Exploration) तथा धार्मिक अनुभूति का ही हिस्सा हैं । इनमें निम्नलिखित समानताएं कही जा सकती हैं–

- धर्म एवं विज्ञान व्यक्ति को ब्रह्माण्ड की समझ हेतु आधारभूत प्रयास तक ले जाते हैं, जो मूलभूत तत्त्व से सम्बन्धित हैं ।
- दोनों ही हमारे ब्रह्माण्ड और जीवन को समझने का प्रयास हैं ।
- दोनों का लक्ष्य एक ही प्रकार हैं, किन्तु वे इस लक्ष्य हेतु भिन्न तकनीकों और दृष्टिकोणों से कार्य कर रहे हैं ।
- दोनों ही (विज्ञान व धर्म) मनुष्य के अनुभवों के सार हैं ।

हमारा यह सर्वथा प्रयास होना चाहिए कि इन अनुभवों को सम्पूर्ण तन्त्र में, जिसमें हमारा विश्वास है, में सम्यक् प्रकार से विकसित हो । अतः इस प्रकार का शोध अपेक्षित है जो विज्ञानियों, दार्शनिकों और धर्मशास्त्रियों को एक सतह पर चिन्तन के लिए प्रेरित करे एवं मानव और उसके उद्देश्य को निकटता से देखने की तरफ उन्मुख करे । वैज्ञानिक ए. पी. जे. अब्दुल कलाम का भी मन्तव्य है–

[229] अथर्व. 12/1/12

[230] यजु. 32/8

[231] ISAACSON WALTER, EINSTEIEN HIS LIFE AND UNIVERSE, p. 390

''Ancient Sanskrit literature is a storehouse of scientific principles and methodology. The work of our own ancient scholors should be thoroughly examined and where possible integrated with modern science.'' [232]

हमें मानसिक और भौतिक विकास के संयोजन की आवश्यकता है । इन दोनों को एक साथ चलना चाहिए । विज्ञान और प्रौद्योगिकी बहुत विकसित हुए हैं । निश्चित ही यह विकास हमारे लिये महत्वपूर्ण और उपयोगी रहा है लेकिन इसी समय पर प्रगति के कारण मानवता आतंक और नई चिंताओं का सामना कर रही है । यह केवल विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कारण नहीं है, क्योंकि अन्ततः हमारे मन का स्वभाव और हमारी प्रेरणा ही उस दिशा को तय करते हैं, जिसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाता है । विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सृजनात्मक अथवा ध्वंसात्मक रूप में उपयोग अंततः मानव मन पर ही निर्भर करता है । यह सुनिश्चित करना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि भौतिक अथवा वैज्ञानिक विकास के साथ–साथ आंतरिक, आध्यात्मिक विकास भी हो । भूमि सूक्त में कहा गया है –

''सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।।'' [233]

बृहत् सत्य, प्राकृतिक नियम, क्षात्र तेज, दीक्षा, तप, ज्ञान और यज्ञ यह सातों पृथिवी को धारण करते हैं । इन सातों से युक्त होकर ही पृथिवी प्रगति पथ पर अग्रसर होती है ।

पृथिवी की सम्यक् सुरक्षा के अनन्तर ही पर्यावरण रक्षण सम्भव है । पर्यावरण रक्षा एक प्रकार से जीने की कला है । पर्यावरण की सुरक्षा एवं संवर्धन के सन्दर्भ में मनुष्य का वैचारिक परिवर्तन महत्त्वपूर्ण है । मनुष्य के दृष्टिकोण परिवर्तन से ही पृथिवी प्रदूषण सम्बन्धी समस्या का हल सम्भव है । वर्तमान समय में यह महत्त्वपूर्ण समस्या है कि जो दृष्टिगत है उसे परिवर्तित करने का प्रयास किया जा रहा है । मनुष्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पृथिवी के स्वरूप को विकृत कर रहा है । अति भौतिकता का यह दृष्टिकोण पृथिवी के सन्दर्भ में उसकी जड़वादी दृष्टि (पारम्परिक भौतिकी) का ही द्योतक है । अधुना मनुष्य की अति–उपभोग की प्रवृत्ति के भयावह परिणाम वर्तमान में वैश्विक तापवृद्धि, पारिस्थिकी असन्तुलन, न्यून जैव–विविधता, ओजोन क्षरण आदि रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं । जब तक यह दृष्टि बनी रहेगी तब तक पृथिवी संरक्षण असंभव है । राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों का आयोजन, विस्तृत बजट का प्रावधान व पृथिवी संरक्षण सम्बन्धी विभिन्न

[232] Ignited minds, p. 87
[233] अथर्व. 12/1/1

कार्यक्रमों का संचालन इस दिशा में श्लाघनीय प्रयास हो सकते हैं परन्तु स्थायी समाधान नहीं । यह केवल दृष्टि परिवर्तन (प्रत्येक अंश में चेतना का विस्तार) से ही संभव है ।

पृथिवी पर स्थित सभी वस्तुएं एक–दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित तथा परस्पर अवलम्बित हैं । प्रकृति के किसी भी अंश में हानि पहुंचाने के परिणामस्वरूप इसमें विकृति उत्पन्न होती है जिससे सम्पूर्ण वातावरण प्रभावित होता है । स्वार्थ के वशीभूत मनुष्य प्रकृति का अति दोहन करने लगता है । वृक्षों को निरन्तर काटने के फलस्वरूप पशु–पक्षी एवं अन्य जीवों के आश्रय–स्थल में कमी आने के साथ–साथ मौसम में भी व्यतिक्रम होता है । पेड–पौधे ऑक्सीजन प्रदान करने के साथ ही पृथिवी के क्षरण एवं मरूस्थलीकरण की प्रक्रिया को भी रोकते हैं । वृक्षों को नष्ट कर मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए कंक्रीट की विशाल इमारतें बनवा ली । अपने हित के लिए दूसरों के आश्रय छीनने की यह प्रवृत्ति स्वार्थ की पराकाष्ठा है ।

वर्तमान समय में पारम्परिक विज्ञान के प्रकृति जड़वादी तथा द्वैत सिद्धान्त के स्थान पर वैदिक एवं प्राचीन यूनानी अवधारणा– ‘प्रत्येक अंश को चेतन मानकर देवत्व का समावेश’, के आधार पर जीवन शैली जीना अत्यावश्यक है । इस चिन्तन में प्रकृति संवर्धन एवं संरक्षण के बीज विद्यमान हैं । आधुनिक भूगर्भविज्ञानी भी प्रत्येक अंश में चेतनता को स्वीकार करते हैं तथा निरन्तर गहन शोध में संलग्न हैं । वैज्ञानिकों के अथक प्रयास के परिणामस्वरूप ‘गाया परिकल्पना’ (Gaia hypothesis) जैसे विचार एवं सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं । वैदिक चिन्तन के ‘पृथिवी माता’, प्राचीन यूनानी परम्परा के ‘Mother Earth/Earth Goddess’ भूगर्भ विज्ञानियों के ‘Earth alive’ जैसे विचार एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण करते हैं । प्रस्तुत शोध कार्य द्वारा निम्न बिन्दुओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है–

- पृथिवी के प्रत्येक अंश में चेतना व्याप्त है अतः दृष्टिकोण परिवर्तन अत्यावश्यक है ।
- वैदिक ऋषि के अनुसार पृथिवी मनुष्य के लिए केवल भौतिक सुख का साधन नहीं है, मनुष्य स्वयं इसी का ही अंग है ।
- पृथिवी का आवश्यकतानुसार उपभोग के साथ इसके प्रति सर्जनात्मक प्रवृत्ति भी आवश्यक है ।
- भूमि किसी की निजी सम्पत्ति नहीं है, इसी परिप्रेक्ष्य में दूसरों के अधिकारों को ध्यान में रखकर प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग पर बल दिया है ।

- मानव के अस्तित्व के लिए प्राकृतिक शक्तियां ही सर्वोपरि हैं अतः प्राकृतिक तत्त्वों का आदर करते हुए पर्यावरण संवर्धन एवं इनकी सुरक्षा तथा पोषण हेतु सजग रहने की आवश्यकता है ।
- वैदिक ऋषि व प्राचीन यूनानी दर्शन पृथिवी में देवत्व को स्वीकार करते हुए इससे आत्मीयता का सम्बन्ध रखते हैं । यह सम्बन्ध व्यक्ति के दृष्टिकोण को परिवर्तित कर पृथिवी के प्रति सम्मानजनक एवं पूजनीय भाव को विकसित करता है ।
- प्रकृति की सुरक्षा में सर्वस्व समर्पण की भावना व इसकी सुरक्षा के लिए वृहत सत्य, ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म, यज्ञ इन सप्त गुणों के सम्यक् धारण हेतु प्रेरित किया गया है ।
- भूमि की रक्षा के लिए 'पृथिवी सूक्त' में प्रकृति पूजन का विधान किया गया है तथा पूजन का रूप स्तुतियों में अभिव्यक्त है ।
- 'पृथिवी सूक्त' में वर्णित पर्यावरणीय सामग्री के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में पर्यावरण की संकल्पना विशिष्ट है । इसे 'पर्यावरण शिक्षा पाठ्यक्रम' के सन्दर्भ में प्रस्तुत करने पर यह उपयुक्त दिशा प्रदान करने में समर्थ हो सकती है ।
- वैदिक साहित्य में वर्णित विभिन्न संकल्पनायें जो प्रयोग के योग्य हैं उनको ग्रहण कर वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगात्मकता प्रदान करने पर ये अधिक लाभप्रद हो सकती हैं ।

वर्तमान समय में मनुष्य के वैचारिक स्तर को बढ़ाना आवश्यक है, जिससे प्राकृतिक स्रोत के प्रति चेतना में देवभाव विकसित हो । अन्त में इतना ही–

''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥'' [234]

[234] यजु. 40/1

पृथिवी सूक्त मन्त्र सूची (अथर्ववेद द्वादश काण्ड/प्रथम सूक्त/प्रथम अनुवाक)

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३ ॥

यस्याश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४ ॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्या पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ॥ १३ ॥

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तमेवे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५।

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१ ॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्या यां वर्चो यद्भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः सन्धृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८ ॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥ २९ ॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ॥ ३० ॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत् ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४ ॥

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून्ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८ ॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥ ४१ ॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

जनं बिभ्रति बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत्पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद्यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।

यै संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७॥

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥ ४९ ॥

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद्भूमे यावय ॥ ५० ॥

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥ ५२ ॥

द्यौश्च मे इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥ ५३ ॥

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥ ५४ ॥

अदो यद्देवि प्रथमाना पुरस्ताद्देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत्तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

अश्व इव रजो दुधुवे वि ताञ्जनान्य आक्षियन्पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७ ॥

यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥ ६० ॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुधा पप्रथाना ।
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ ६२ ॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूम्याम् ॥ ६३ ॥

मन्त्रानुक्रमणिका

क्रम संख्या	मन्त्र	मन्त्र संख्या
1.	अग्निर्दिव आ तपत्यग्ने......	20
2.	अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो......	19
3.	अग्निवासा: पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं......	21
4.	अदो यद्देवि प्रथमाना पुरस्ताद्देवैरुक्ता........	55
5.	अश्व इव रजो दुधुवे वि ताञ्जनान्य........	57
6.	असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या.........	2
7.	अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम......	54
8.	उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्त:.......	28
9.	उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं.....	62
10.	गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते.......	11
11.	ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्त: शिशिरो.....	36
12.	जनं बिभ्रति बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं.....	45
13.	ता न: प्रजा सं दुह्रतां समग्रा......	16
14.	त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं......	15
15.	त्वमस्यावपनी जनानामदिति: कामदुधा......	61
16.	द्यौश्च मे इदं पृथिवी चान्तरिक्षं....	53
17.	निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु....	44
18.	भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया....	63
19.	भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं.....	22
20.	मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्भद्रपापस्य....	48
21.	महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग....	18
22.	मा न: पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा.....	32
23.	यच्छयान: पर्यावर्ते दक्षिणं....	34
24.	यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु.....	35
25.	यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त......	12
26.	यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे....	58
27.	यस्ते गन्ध: पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु.....	25
28.	यस्ते गन्ध: पुष्करमाविवेश यं.....	24
29.	यस्ते गन्ध: पृथिवि संबभूव...	23
30.	यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा....	46

31.	यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते....	52
32.	यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां....	41
33.	यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे....	5
34.	यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा...	39
35.	यस्यां वृक्षा वानस्पत्या....	27
36.	यस्या वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां...	13
37.	यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां....	38
38.	यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो....	3
39.	यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे.....	43
40.	यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या.....	42
41.	यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे....	9
42.	यस्याश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं.....	4
43.	यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति......	51
44.	यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा....	7
45.	याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी.....	37
46.	यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे....	60
47.	यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां....	10
48.	यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद्यां....	8
49.	यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे....	33
50.	यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते....	31
51.	ये गन्धर्वा अप्सरसो ये....	50
52.	ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा....	56
53.	ये त आरण्याः पशवो मृगा वने....	49
54.	ये ते पन्थानो बहवो जनायना	47
55.	यो नो द्वेषत्पृथिवि यः....	14
56.	विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि.....	29
57.	विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा...	6
58.	विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं.....	17
59.	शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी...	59
60.	शिला भूमिरश्मा पांसुः सा...	26
61.	शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु...	30
62.	सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो....	1
63.	सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं....	40

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ***(Bibliography)***

(क) प्राथमिक स्रोत *(Primary Sources)*

(I) साक्षात् स्रोत *(Direct Sources):*

1. *अथर्ववेद संहिता,* डॉ रघुवीर, सरस्वती विहार, लाहौर, 1993 (वि. सं.)

2. *अथर्ववेद संहिता,* श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, औंध, सताता, 1995 (वि. सं.)

3. *अथर्ववेद संहिता,* (सुबोध भाष्य), भा. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (सूरत), 1958

4. *अथर्ववेदः* (शौनकीयः), सायणाचार्यकृतभाष्येण संयोजितः, (सम्पा.) विश्वबन्धुः, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुरम्, 1961

5. *अथर्ववेदः,* (शौनकीयः), श्रीसायणाचार्यकृतभाष्येण संयोजितः, (सम्पा.) ए. महादेव शास्त्री तथा के. रंगाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1984 (प्र. सं.)

6. *अथर्ववेद संहिता,* (सम्पा.) नागशरण सिंह, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1987

7. *अथर्ववेद संहिता,* (सम्पा.) देवीचन्द, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 2001

8. *अथर्ववेद संहिता* (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), श्रीरामशर्मा आचार्य, युग निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उत्तरप्रदेश), दो भाग, 2008

9. *अथर्ववेद संहिता,* (भा.) स्वामी दयानंद सरस्वती, (सम्पा.) पंडिता राकेश रानी, वेदमंदिर, महात्मा वेद भिक्षु सेवाश्रम, दिल्ली

अंग्रेजी–

1. LOVELOCK, JAMES, HEALING *GAIA,* Harmony Books, New York, 1991

2. LOVELOCK, JAMES, *THE AGES OF GAIA: A Biography of our living Earth,* New York, Norton, 1995

3. LOVELOCK, JAMES, *GAIA: A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH,* Oxford University Press, 2000

4. LOVELOCK, JAMES, *HOMAGE TO GAIA: The life on an Independent Scientist,* Oxford University Press, 2001

5. LOVELOCK, JAMES, *THE REVENGE OF GAIA: Why the Earth is Fighting Back and how we can still same Humanity,* Santa Barbar CA; Allen lane 2007

6. LOVELOCK, JAMES, *THE VANISHING FACE OF GAIA AGES OF GAIA: A Final Warning,* NY:Basic Books, New York

(II) असाक्षात् स्रोत *(Indirect Sources):*

1. *ईशावास्योपनिषद्,* (सम्पा.) डॉ. शशि तिवारी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1997

2. *ऋग्वेद संहिता* (दयानंद भाष्य), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, वि. सं. 1980

3. *ऋग्वेद संहिता* (मूल), स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत, 1957

4. *ऋग्वेद संहिता,* स्कन्दस्वामी, (उद्गीथ, वेंकटमाधव, मुद्गल भाष्य) विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1967

5. *ऋग्वेद संहिता* (सायण भाष्य), वैदिक संसोधन मण्डल, पूना, 1983

6. *ऋग्वेद संहिता,* सायणाचार्यकृतभाष्यसहित, (अनु. तथा सम्पा.) डा. जियालाल कम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, (प्र.सं.) 2002

7. *ऋग्वेद संहिता,* सायणाचार्यकृतभाष्यसंवलिता, (अनु. तथा सम्पा.) रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003

8. *ऋग्वेद संहिता* (जयदेव भाष्य), आर्य साहित्य मण्डल, वाराणसी

9. *काठक संहिता,* (सम्पा.) पं. सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1943

10. *गोपथ ब्राह्मण,* (सम्पा.) डॉ. प्रज्ञा देवी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 1999

11. *छान्दोग्योपनिषद,* आनन्दगिरिकृतटीका संवलिता शांकरभाष्यसमेता, वाणीविलास संस्कृत पुस्तकालयः, कासी, 1942

12. *जैमिनीय ब्राह्मण,* (सम्पा.) डॉ. लोकेशचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986

13. *तर्कसंग्रह,* अन्नंभट्ट, (व्या.) पङ्कज कुमार मिश्र, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001

14. *ताण्ड्य ब्राह्मण, सायणभाष्य सहित,* (सम्पा.) चिन्नास्वामी शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1993

15. *तैत्तिरीय संहिता,* (सम्पा.) सातवलेकर , स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1957

16. *तैत्तिरीय ब्राह्मण, भट्ट भास्कर भाष्य सहित,* (सम्पा.) महादेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002

17. *निरूक्त* (यास्क), छज्जुराम शास्त्री (व्या.), मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008

18. *पञ्चदशी,* व्याख्यादिसमेता, (व्या.) रामकृष्ण, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1994

19. *प्रशस्तपादभाष्यम् (पदार्थधर्मसंग्रहः),* प्रशस्तपाद, (सम्पा.) नारायण मिश्र, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, सं. 173, वाराणसी, 1966

20. प्रश्नोपनिषद्, (सम्पा.) स्वामी चिन्मयानंद, सेन्ट्रल चिन्मयामिशन ट्रस्ट, बम्बई, 1992

21. बृहदारण्यकोपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, (सं.) 2025

22. *बृहत्संहिता,* वराहमिहिर विरचिता, (व्या.) अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009

23. *ब्रह्मसूत्र–शाङ्करभाष्यम्* (श्री वाचस्पति मिश्र प्रणीत 'भामती' संवलित), स्वामी योगीन्द्रानंदकृत 'भामती' हिन्दी व्याख्या विभूषित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1995

24. *मनुस्मृति,* (सम्पा.) जगन्नाथशास्त्रीतैलङ्ग. , भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 2002

25. *मैत्रायणी संहिता,* (सम्पा.) श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, बम्बई, 1973

26. *यजुर्वेद संहिता* (दयानंद भाष्य), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1929

27. *यजुर्वेद संहिता,* श्रीमदुव्वटाचार्य विरचित मन्त्रभाष्येण, श्रीमहीधराचार्य कृत वेदप्रदीप भाष्येण च समन्विता, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978

28. *यजुर्वेद संहिता* (सुबोध भाष्य), भा. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (सूरत), 1985

29. *लक्षणावली,* उदयनाचार्य, (सम्पा.) शशिनाथ झा, मिथिला विद्यापीठ ग्रन्थमाला, सं. 14, दरभंगा, 1963

30. *वाजसनेयि संहिता* (उव्वट, महीधर भाष्य), निर्णय साागर प्रेस, बम्बई, 1912

31. *वेदान्तसार,* सदानन्द, (सम्पा.) सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, सुदर्शन प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972

32. *वेदान्तसार,* सदानंद, (व्या.) डॉ आद्याप्रसाद मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001

33. *वैशेषिकसूत्रम्,* कणाद, (सम्पा.) नारायण मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1966

34. *शतपथ ब्राह्मण,* (सम्पा.) स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, (अनु.) गंगाप्रसाद उपाध्याय, विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, 2000

35. *शुक्लयजुर्वेदीयतैत्तिरीयसंहिता,* भट्टभाष्करमिश्रविरचितभाष्यसहिता, (सम्पा.) ए. महादेव शास्त्री तथा के. रंगाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, (प्र.सं.) 1984

36. *शुक्लयजुर्वेदीयतैत्तिरीयसंहिता,* सायणभाष्यसमेता, (सम्पा.) मण्डनमिश्रः, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नई दिल्ली, 1986

37. *श्वेताश्वतरोपनिषद् 'दीपिका',* आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलिः, पूना, 1966

38. *सांख्यसूत्रम्,* कपिल, (सम्पा.) रामशंकर भट्टाचार्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, बनारस, 1977

39. *सामवेद* (सुबोध भाष्य), श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1985

40. *श्रीमद्वाजसनेयिमाध्यन्दिनशुक्लयजुर्वेदसंहिता,* श्रीमदुव्वटाचार्यविरचितमन्त्रभाष्येण श्रीमन्महीधरकृतवेदप्रदीपाख्यभाष्येण च संवलिता, (सम्पा.) वासुदेव शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1913

41. *श्रीमद्भगवद्गीता* (शाङ्करभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000

अंग्रेजी–

1. Capra, Fritjof, *The Tao of Physics: An Exploration of the Parallels between Modern Physics and Eastern Mysticism,* Shambhala Publications, Berkley, California, 1991

2. Capra, Fritjof, *The Web of Life 'A New Synthesis of Mind and Matter from the author of the Tao of Physics,* Harper Collins Publishers, 1996

3. Harding, Stephan, *Animate Earth,* Science,Intuition and Gaia, Green Publishing, Chelsea, 2006

4. Vernadsky, Vladimir, *The Biosphere*, (Reprint) Synergetic Press, Oracle, Arizona, 1986

(ख) द्वितीयक स्रोत *(Secondary Sources):*

हिन्दी–

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण, *वेदरश्मि,* स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत, 1965

2. उपाध्याय, बलदेव, *भारतीय दर्शन,* शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1997

3. उपाध्याय, रामानुज, *वैदिक देवता तत्त्व विमर्श,* साहित्यकार सहयोगी प्रकाशन, मदैनी, वाराणसी, 1999

4. एस., राधाकृष्णन, *भारतीय दर्शन,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1966

5. कुमार, शशिप्रभा, *वैदिक विमर्श,* जे.पी. पब्लिशिंग हाऊस, 1996

6. कुमार, शशिप्रभा, *वैदिक अनुशीलन,* विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1998

7. कृष्णलाल (सम्पा.), *वैदिक–व्याख्यान–माला,* ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1982

8. कृष्णलाल, *वेद परिचय,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1993

9. कृष्णलाल, *वैदिक संहिताओं में विविध विद्याएं,* जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1993

10. चतुर्वेदी, गिरिधर, *वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1972

11. झा, धनेश्वर, *वैदिक साहित्ये सृष्टिप्रकिया,* राष्ट्रिय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर, 2009

12. त्रिपाठी, गयाचरण, *वैदिक देवताः उद्भव एवं विकास,* भारतीय विद्याप्रकाशन, दिल्ली, 1982

13. त्रिवेदी, मातृदत्त, *अथर्ववेद एक साहित्यिक अध्ययन,* विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1973

14. दवे, दया, *वेदों में पर्यावरण,* सुरभि पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2000

15. द्विवेदी, कपिलदेव, *अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन,* विश्व—भारती अनुसंधान परिषद्, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1988

16. दुबे, सीताराम, *वैदिक संस्कृति और उसका सातत्य,* प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2006

17. फतहसिंह, *वेदविद्या का पुदरुद्धार,* वेद संस्थान, नई दिल्ली, 2004

18. भगवद्दत्त*, वेद—विद्या—निदर्शन,* इतिहास प्रकाशन मण्डल, नई दिल्ली, 1959

19. भट्टाचार्य, रामशंकर (सं.), *सांख्य दर्शन,* भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1994

20. भौतिकी (कक्षा 11), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2008

21. *मानवाधिकार : एक परिचय; मानवाधिकार लैगिंक न्याय; पर्यावरणीय सम्बन्धी कानून एक अध्ययन,* मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

22. मिश्र, कमलाकान्त (संम्पा.), *संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान का इतिहास,* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, (प्र.सं.) 2003

23. मिश्र, लक्ष्मी, *अमूर्त वैदिक देवता,* नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2006

24. रस्तोगी, वन्दना, *प्राचीन भारत में पर्यावरण चिन्तन,* पब्लिकेशन्स स्कीम, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2000

25. रुस्तगी, उर्मिला, *वेद तथा पर्यावरण,* जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996

26. रानी, प्रतिभा, *वैदिक संहिताओं में आचार-मीमांसा,* परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली 1989

27. राय, रामकुमार (अनु.), वैदिक माइथोलॉजी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1984

28. वर्मा, विष्णुकान्त, सृष्टि उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2008

29. विज्ञान और प्रौद्योगिकी (कक्षा 10), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2003

30. शर्मा, डॉ. उर्मिला (अनु.), *वेद व विज्ञान,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1992

31. शर्मा, दामोदर, व्यास हरिश्चन्द्र, *आधुनिक जीवन और पर्यावरण,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1991

32. शास्त्री, कपिलदेव, *वैदिक ऋषि एक परिशीलन,* संस्कृत विभाग कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र, 1978

33. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत, *वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार,* विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, 2002

34. सूर्यकान्त (अनु.), *वैदिक देवशास्त्र,* अन्सारी रोड़ दरियागंज, दिल्ली, 1961

35. सूर्यकान्त (अनु.), *वैदिक धर्म और दर्शन* (कीथ कृत), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1963

36. सोनी, सुरेश, *भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा,* अर्चना प्रकाशन, भोपाल, 2008

अंग्रेजी–

1. Bali, Suryakant (ed.), *Historical and Critical studies in the Atharvaveda,* Nag Publishers, Delhi, 1981

2. Chaubey, Braj Bihari, *Treatment of Nature in the Rigveda,* Vedic Sahitya Sadan, Hosiyarpur, 1970

3. Chaubey, Braj Bihari, *The New Vedic Selection,* Bhartiya Vidya Prakashan, Varanasi, 1972

4. Isaacson, Walter, *Einstien His Life and Universe*, pocket books, 2008

5. Jitatmanand, Swami, *Holistic Science and Vedanta,* Bhartiya Vidya Bhavan, Mumbai, 1991

6. Jitatmanand, Swami, *Modern Physics and Vedant*, Bhartiya Vidya Bhavan, Mumbai, 6th edition 2006

7. Kalam, A. P. J., Abdul, *Ignited Minds,* Penguin books, India, 2002

8. Margulis, lynn, *Gaia: The Living Earth, Dialogue with Fritjof Capra*, The Elmwood News Letter, Berkeley, Cal., Vol. 5, 1989

9. Murthy, S. R. N. , *Vedic View of the Earth- A Geographical Insight into the Vedas,* D.K. Printworld (P) Ltd., New Delhi, 1997

10. Panda, N. C., *Māyā in Physics*, Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, Delhi, 2005

11. Paranjape, Kalpana M., *Ancient India, Insights and Modern Science* (A UGC Project) Bhandarkara Oriental Research Insitute, Pune, 1996

12. SCHRODINGER, ERWIN, *WHAT IS LIFE ?*, CAMBRIDGE UNIVERSITY PRESS, 2006

13. Sprentak,Charlene, *Lost Goddess of Early Greece*, Moon Books, 1978

14. TATHAGATANANDA, SWAMI, *ALBERT EINSTEIN HIS HUMAN SIDE,* The Vedanta Socienty of New York, 2009

15. Vannucci, M., *Human Ecology in the Vedas*, D. K. Printword (P) Ltd., New Delhi, Frist Published in India, 1999

(ग) कोष एवं विश्वकोष *(Dictionaries and Encyclopaedias):*

संस्कृत–हिन्दी

1. *अमरकोश,* अमरसिंह, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1961

2. *उणादिकोषः,* (व्या.) सोमलेखा एवम् पं. ईश्वरचन्द्रः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2008

3. *उणादिपदानुक्रमकोषः,* नारायण शास्त्री काङ्करः, (प्रका.) श्रीमती शान्ति देवी, सुमेरुकर्ण मार्ग, धान्यमण्डी, जयपुरम्

4. *भारतीय संस्कृति कोश,* (सं.) देवेन्द्र मिश्रा, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006

5. *मेदिनीकोष,* मेदिनीकार, काशी संस्कृत सीरीज, बनारस, 1916

6. *यजुर्वेद सर्वानुक्रम–सूत्र,* कात्यायन, स्वाध्याय मण्डल, सतारा, 1953

7. *वाचस्पत्यम्,* तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यः, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2026 (सं.)

8. *वैदिक इण्डेक्स,* मैकडॉनल और कीथ, (अनु.) डॉ. रामकुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1962

9. *वैदिक–ऋषि–देवतानुसारी मन्त्रानुक्रमकोषः,* (सम्पा.) रविप्रकाश आर्य, रामनारायण आर्य, इण्डियन फाउण्डेशन फॉर वैदिक साइन्स, रोहतक, (प्र.सं.) 2004

10. *वैदिक–कोशः,* भगवद्दत्त एवं हंसराज, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, वाराणसी, 1926

11. *वैदिक–कोश,* चन्द्रशेखर उपाध्याय एवं अनिल कुमार, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1995

12. *वैदिक–कोश (दयानंद भाष्याधारित),* पं. राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1999

13. *वैदिक निघण्टु संङ्ग्रह,* (सं.) धर्मवीर विद्यावारिधि, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ (सोनीपत), 1989

14. *वैदिक निर्वचन कोष,* डॉ जियालाल, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2000

15. *वैदिक पदानुक्रमकोषः,* मौरिस ब्लूमफील्ड, (प्र. सम्पा.) विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1977

16. *वैदिक पदानुक्रमकोषः,* मौरिस ब्लूमफील्ड, (संम्पा.) ओमनाथ बिमली, सुनील कुमार उपाध्याय, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, (सं.) 2004

17. *वैदिकवाङ्मयनिर्वचनकोषः,* रूपकिशोर शास्त्री, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2001

18. *शब्दकल्पद्रुम,* राजाराधाकान्त देव, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1967

19. *सर्वानुक्रमणी (शौनकाचार्यविरचितानुवाकानुक्रमणी छन्दः संख्या च),* (सम्पा.) मेकडॉनल ए. ए., (अनु.) राजेन्द्र नाणावटी, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 2001

20. *श्रौतकोशः,* (प्रका.) वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1958

21. *हिन्दी विश्वकोष* (1–12 खण्ड), (सं.) कमलापति त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1970

अंग्रेजी–

1. *A GRAMMATICAL WORD INDEX TO THE FOUR VEDAS* (part ii), (ed.) VISHVABANDHU, Vishveshvaranand Vedic Research Institute, Hoshiarpur, 1997

2. *A Practical Vedic dictionary*, Dr. Suryakanta, Oxford University Press, Delhi,1981

3. *A UNION LIST OF PRINTED INDIC TEXT AND TRANSLATION IN AMERICAN LIBRARIES,* (Reprint 1967), AMERICAN ORIENTAL SOCIETY

4. *A Vedic Concordance,* Bloomfield Mourice, Motilal Banarsidas, Delhi, 1996

5. *DICTIONARY OF VEDAS,* Dr. T. Rengarajan, EASRERN BOOK LINKERS, DELHI, 2000

6. *Encyclopaedia Britannica, Micropaedia* (vol.1-10), Helen Heminqway, Benton, ed:15th, 1973-74

7. *Encyclopaedia of Indian Philosophy, Vol. 1, Karl H. Potter, Motilal Banarasidas, Delhi, 1995*

8. *English-Sanskrit- Dictionary,* (Reprint edition) Monier Williams, Munshi Ram Manohar Lal, Delhi

9. *Vedic Index of Names and Subjects*, A. A. Macdonell & Keith, Motilal Banarsidas, Delhi, 1982

10. *Vedique Biblliographie*, Louis Renou (ed.) R.N. Dandekar, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona

(घ) पत्र–पत्रिकाएं :

1. *Bhartiya Vidya,* Bhartiya Vidya Bhawan, Bombey

2. India and Korea Thought The Ages: Historical, Religious & cultural perspectives, Manak Publications PVT LTD, first ed. 2009, ISBN. 978-81-7831-178-4

3. The Indian Historical Review, Indian Council of Historical Rasearch, New Delhi, vol.xxxii, jan. 2005

4. *International journal of Dayanand Vedpith,* Delhi

5. *Vedic Digest*, Hoshiarpur

6. *Vishveshvaranand Indological Journal,* Vishveshvaranand Institute of Sanskrit and Indological studies, Punjab University Hoshiarpur

7. *Vishwa Jyoti*, Vedic Sodha Sansthan, Hoshiarpur

8. Yavanika, Indian society for Greek and Roman studies, vol. 14, 2012, ISSSN: 0971-5681

9. महास्विनी, प्रधान सम्पादक आचार्य हरेकृष्ण शतपथी, षाण्मासिक शोध पत्रिका, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठम् , तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः ।

(ङ) अन्तर्जालीय स्रोत *(Internet Sources):*

1. *http://en.wikipedia.org/wiki/gaia-hypothesis # the earth alive*

2. *http://en.wikipedia.org/wiki/earth goddess*

3. *www.google/ecology.co.in*

4. *http://www.context.org/ICLIB/IC24/Spangler.htm*

5. *http://www.lifepositive.com/mind/philosophy/gaia*

6. *En.wikipedia.org/wiki/Gaia_(mythology)#cite_note-1*

7. *http://www.lifepositive.com/mind/philosophy/gaia/gaia_article.asp*

8. *www.srds.ndirect.co.uk/sustaina.html*